॥ श्रीः ॥

विद्याभवन संस्कृत ग्रन्थमाला
३०

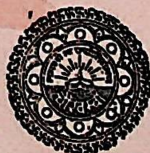
Siddharam Deo,
JANGAMWADI MATH
VARANASI-221001

चन्द्रालोकरहस्यम्

(चन्द्रालोक-प्रश्नोत्तरी)

समुद्भावकौ—
पं० श्रीजगन्नाथ-लक्ष्मणशास्त्री मानवल्ली
तथा
पं० श्रीगोविन्द-अनन्तरामशास्त्री वेतालः

सम्परिष्कर्ता—
...अनन्तरामशास्त्री वेतालः, साहित्याचार्यः



Siddharam Deo,
JANGAMWADI MATH
VARANASI-221001

चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी-२२१००१

Jagannath - Lakshman
Shastri & Govind -
Anantaram Shastri
Chandralokrahasyam.

Jagannath - Lakshman Shastri & Govind - Anantaram Shastri
Chandralokrahasyam.

चन्द्रालोकरहस्यम्

(चन्द्रालोक-प्रश्नोत्तरी)

समुद्भावकौ—

पं० श्रीजगन्नाथ-लक्ष्मणशास्त्री मानवल्ली

तथा

पं० श्रीगोविन्द-अनन्तरामशास्त्री वेतालः

सम्परिष्कर्ता—

स्व० पं० अनन्तरामशास्त्री वेतालः, साहित्याचार्यः



चौखम्बा विद्याभवन

वाराणसी २२१००१

प्रकाशक—

चौखम्बा विद्याभवन

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)

चौक (बनारस स्टेट बैंक भवन के पीछे)

पो० बा० नं० १०६९, वाराणसी २२१००१

दूरभाष : ६३०७६

पञ्चम संस्करण १९८५

मूल्य १०-००

अन्य प्राप्तिस्थान—

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

के० ३७/११७, गोपालमन्दिर लेन

पो० बा० नं० ११२९, वाराणसी २२१००१

दूरभाष : ५५३५७

*

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

३८ यू. ए., जवाहरनगर, बंगलो रोड

दिल्ली ११०००७

मुद्रक—
श्रीजी मुद्रणालय
वाराणसी

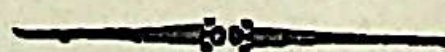
समर्पणम्

आन्ध्रश्रीकविलक्ष्मणात्मजजगन्नाथाभिधानस्तथा,
गोविन्दः सदनन्तरामतनयो वेतालवंशोद्भवः ।
श्रीमत्सद्गुरुभालचन्द्रकरयोर्भक्त्याऽर्पयेते नवं,
'चन्द्रालोकरहस्य' नामकमिमं ग्रन्थप्रसूनाञ्जलिम् ॥

शुभाशिषः

(राजकीयवाराणसेय संस्कृतमहाविद्यालयीयसाहित्यप्रधानाध्यापकचरः)

साहित्यशास्त्राब्धिविगाहनोत्कच्छात्रौघहृत्पद्मविकासहेतुः ।
प्रबन्धकर्तुः प्रथमः प्रयासः, प्रोत्साह्य विज्ञैरभिनन्दनार्हः ॥ १ ॥
आमूलमध्याग्रमलं समीक्ष्य, सहर्षमुल्लासितमानसेन ।
भूयोऽपि नूत्नानपरान् प्रबन्धान्, निर्मातुमावेद्य विरम्यते शम् ॥ २ ॥



पीठिका

'नागराजिकृतायताऽमलयज्ञसूत्रविराजितम्,
नागराजिविलोललोचनकैरवामृतदीधितिम् ।
नागराजिसमृद्धिनिस्तुलसम्पदर्पणदक्षिणम्,
नागराजिहरं श्रयेमहि नीललोहितबालकम् ॥'

(म. म. पं. रामशास्त्री मानवल्ली की 'गणेशस्तुति' नामक पद्यमाला का
द्यपुष्प) ।

प्रारम्भिक

आज हम आपके करकमलों में 'चन्द्रालोकरहस्यम्' नामक यह छोटी
स्तिका उपस्थित कर रहे हैं, वह भगवान् शङ्कर, विघ्नविनाशक श्रीगजानन,
गवती सरस्वती एवं पूज्यतम् गुरुचरणों के आशीर्वादों का प्रसाद है।

इस प्रश्नोत्तरी का प्रेरणास्रोत 'सूक्तिपीयूषवर्ष' जयदेवप्रणीत 'चन्द्रालोक'
है, जिसके अस्तित्व के कारण ही हम आपके सम्मुख यह रचना प्रस्तुत कर
के।

'चन्द्रालोक' अलङ्कारशास्त्र के समस्त अङ्ग-उपाङ्गों का हमें परिचय कराता
है। 'चन्द्रालोक', उसके, प्रणेता एवं प्रस्तुत 'रहस्यम्' का परिचय देने के पूर्व
'अलङ्कारशास्त्र' सम्बन्धी सामान्य जानकारी उपस्थित करना असङ्गत न होगा।

अलङ्कारशास्त्र

'अलङ्कारशास्त्र' का ही पर्यायशब्द 'साहित्यशास्त्र' है। उसके सम्बन्ध में
परमपूजनीय गुरुवर्यों की गुरुपरम्परा में से अधोलिखित स्रग्धराबद्ध, प्रासादिक
एवं अनुप्रासमण्डित वाणी प्रवाहित हुई।—

'नाऽऽचान्तं यच्चिरन्तनैरपरिचितचरं यच्च वाचालचेलै—
रौचित्यं यन्न मुञ्चेदपि च विरचयेद्यच्चमत्कारि चेतः ।
तादृक् प्रौढिप्रकर्षप्रणयिभवति या सूयते काव्यरत्नम्,
पुण्यैः कस्याऽप्यगण्यैः परिणमति मुखे सा हि साहित्यरीतिः ॥'

'जो (काव्यरत्न) पुरातनों के द्वारा भी स्वरूपबद्ध न किया जा सका,
अत्यन्त वाचालों को पहले से ही अपरिचित था, जिसने अपने 'औचित्य' (नियम
बद्धता) को नहीं छोड़ा और जिसने अन्तःकरण को आश्चर्यान्वित किया,
प्रकारके अत्यन्त प्रौढ वचनों से सुशोभित काव्यरत्न को जो जन्म देता है
साहित्यप्रकार किसी एक ही (व्यक्ति) के मुख में उसके अगणित पुण्यों
कारण स्थान पाता है।'

इसीलिए राजशेखर (ई० ९१० के लगभग) ने अपनी 'काव्यमीमांसा'
'सप्तम वेदाङ्ग' पद के द्वारा 'अलङ्कारशास्त्र' अथवा 'साहित्यशास्त्र' की उपयो
गिता समझाई है।

'अलङ्कारशास्त्र' के प्रादुर्भाव के विषय में 'काव्यमीमांसा'कार राजशेख
ने इस प्राचीन जनश्रुति को लिपिबद्ध किया है—

'सर्वप्रथम इस शास्त्र का उपदेश श्रीमहेश्वर ने अपने चौसठ अध्येताओं
किया था, जिनमें ब्रह्मदेव एवं पुरुषोत्तम भी प्रधानतम अध्येताओं के रूप में थे
ब्रह्मदेव ने अपने मानसपुत्रों एवं अन्य शिष्यों को इसकी दीक्षा दी, जिसमें सरस्वत
के पुत्र 'काव्यपुरुष' प्रधान थे। इन्होंने ही समस्त संसार में अलङ्कारशास्त्र
प्रसारित किया।' [काव्यमीमांसा

राजशेखर ने ही आगे चलकर 'काव्यपुरुष' का स्वरूप इस प्रकार समझाया
'इसका शरीर शब्द एवं अर्थ है, आत्मा रसादि है, 'श्लेष' आदि गुण शौ
आदि गुणों के समान हैं, श्रुतिकटु आदि दोष कानापन आदि दोषों की तर
हैं, 'पाञ्चालिकी' आदि रीतियाँ शरीर की सुघड़ता की जगह हैं, अनुप्रा
उपमा आदि अलङ्कार हार आदि गहनों के समान हैं।'

इसी प्रकार हम भी आगे चलकर यह कल्पना कर सकते हैं—

'अक्षरसंहति' आदि लक्षण सामुद्रिकशास्त्रनिर्दिष्ट हस्तरेखाचिह्नों के समा
हैं, आदि।

राजशेखर ने इसे 'आन्वीक्षिकी', 'त्रयी', 'वार्ता' एवं 'दण्डनीति' इन चार
विद्याओं का निष्यन्द कहा है। यायावरीय ने इसे 'पञ्चमीविद्या' कहा है
प्राचीनतम वैदिक वाङ्मय से लेकर आज की प्रचलित भाषाओं के साहित्य
तक में आलङ्कारिक प्रयोग होते आए हैं इसी से इसकी उपादेयता प्रकट है।

ई० पू० १००० के पूर्ववर्ती गार्ग्य आदि आचार्यों ने उपमा आदि अलङ्कारों के स्वरूप निर्धारित करने की चेष्टा की थी एवं उनके सिद्धोपमा, भूतोपमा, रूपोपमा, आदि भेद भी गिनाए थे। अलङ्कारशास्त्र के उपलब्ध ग्रन्थों में भरतमुनि प्रणीत 'भरतनाट्यशास्त्रम्' (ई० पू० द्वितीय शतक) प्राचीनतम एवं नरसिंह कवि प्रणीत 'नञ्जराजयशोभूषणम्' (ई० अष्टादश शतक) आधुनिकतम ग्रन्थरत्न हैं। 'संस्कृतसाहित्येतिहास' में ३५ आलङ्कारिक एवं उनके ४९ ग्रन्थों का परिचय दिया गया है।

काव्य-लक्षण

'विशिष्टौ शब्दार्थौ काव्यम्' यह काव्यलक्षण सर्वसम्मत है। परन्तु 'विशिष्टौ' पद के द्वारा शब्द एवं अर्थ में किस प्रकार का 'वैशिष्ट्य' अभीष्ट है इसमें आचार्यों में मतभेद है। कोई इस 'वैशिष्ट्य' को 'धर्ममूलक', कोई 'व्यापारमूलक' एवं कोई 'व्यङ्ग्यमूलक' मानते हैं।

(१) 'धर्ममूलक वैशिष्ट्य' मानने वालों में भी दो पक्ष हैं—

१. 'अनित्यधर्ममूलकवैशिष्ट्य' वादियों का—भामह ('काव्यालङ्कार'कार, समय ई० ५०० के करीब), उद्भट ('अलङ्कारसंग्रह'कार, समय ई० ८०० के करीब) आदि आलङ्कारिकों का—'अलङ्कारमत'।

२. 'नित्यधर्ममूलकवैशिष्ट्य'वादियों—वामन ('काव्यालङ्कारसूत्र'–'कविप्रियावृत्ति'-प्रणेता, समय ई० ८००) प्रभृति विद्वद्वरेण्यों का 'गुणमत' एवं 'रीतिमत'।

(२) 'व्यापारमूलकवैशिष्ट्य' मानने वालों में भी दो मत हैं—

१. 'शब्दव्यापारमूलकवैशिष्ट्यवादी कुन्तक ('वक्रोक्तिजीवित'कार, समय ई० १०२५) का 'वक्रोक्तिसम्प्रदाय'।

२. 'अर्थव्यापारमूलकवैशिष्ट्य'वादियों का—भट्टनायक, अभिनवगुप्तपादाचार्य ('ध्वन्यालोकलोचन'कार, समय ई० १०० के करीब) आदि आचार्यों का रससम्प्रदाय'।

(३) 'व्यङ्ग्यमूलकवैशिष्ट्य' मानने वालों में सर्वप्रमुख हैं ई० ८५० के समयवर्ती 'ध्वन्यालोक'कार आनन्दवर्धनाचार्य जिनका मत 'ध्वनि सिद्धान्त' कहलाता है।

ग्रन्थकार निर्दुष्टत्व आदि धर्मों से विशिष्ट शब्दों को काव्य मानते हैं। निरर्थक शब्दों का प्रयोग हो ही नहीं सकता, अतः सार्थक निर्दुष्टत्वादिधर्म-विशिष्ट शब्दनिष्ट काव्य ही ग्रन्थकार को अभिप्रेत है। इससे यह निश्चित है कि ग्रन्थकार 'नित्यानित्योभयविधधर्ममूलकवैशिष्ट्य' वादी हैं

चन्द्रालोक

'चन्द्रस्य आलोक इव आलोकः=प्रकाशः काव्योपयोगिविषयाणां यस्मिन् स चन्द्रालोकः' यह 'चन्द्रालोक' शब्द की व्युत्पत्ति है। अर्थात् 'चन्द्र के प्रकाश के समान काव्योपयोगी विषयों का प्रकाश' इसमें आपको मिलेगा।

इसीलिए ग्रन्थकार ने इसके प्रत्येक प्रकरण को 'मयूख' यह संज्ञा दी है। 'मयूख' शब्द का अर्थ 'किरण' होता है। 'चन्द्रालोक' का प्रत्येक प्रकरण ही आपको नूतनतम ज्ञानकिरण से आह्लादित करता है।

अतएव ग्रन्थकार अपने को 'सूक्तिपीयूषवर्ष' कहते हैं। इसका अर्थ है—'सुन्दर वचनरूपी अमृत की वर्षा करने वाला'।

चन्द्रालोक का विषय

सम्पूर्ण चन्द्रालोक में शब्द, दोष, लक्षण, गुण, अलङ्कार, रसादि, रीति, वृत्ति, काव्यभेद, काव्यस्वरूप आदि का विचार किया गया है। यह ग्रन्थ अनुष्टुप् छन्दो में है। इसकी श्लोक संख्या २८५ है। इसमें दस मयूख हैं।

प्रथम मयूख का नाम 'वाग्विचार' है, क्योंकि इसमें शब्द का विचार प्रमुख रूप से किया गया है। इसमें सोलह कारिकाएँ हैं। इसमें क्रम से काव्याध्ययनप्रयोजनं, काव्यनिर्माणकारण, काव्यस्वरूप, नवविध शास्त्रीय शब्द, पद, वाक्य, खण्डवाक्य, महावाक्य आदि विषयों का विचार किया गया है।

द्वितीय मयूख का नाम 'दोषनिरूपण' है, क्योंकि इसमें प्रमुख रूप से दोष-विचार किया गया है। इसमें ४४ कारिकाएँ हैं। इसके अन्वर्गत दोषसामान्य-लक्षण, उनचास दोषों का सोदाहरण सलक्षण निर्वचन, दोषाश्रय एवं सोदाहरण सलक्षण त्रिविध दोषाङ्कुश आदि विषय प्रतिपादित किये गए हैं।

दोषों में—१. श्रुतिकटु, २. त्रिविध अश्लील एवं ३. अनुचितार्थं ये तीन 'पद-वाक्यगत' दोष हैं। १. निरर्थक, २. अवाचक, ३. क्लिष्ट, ये तीन 'पदमात्र-गत' दोष हैं। १. क्लिष्ट, २. अविमृष्टविधेयांश, एवं ३. विरुद्धमतिकृत् ये तीन

'समासमात्रगतपददोष' हैं। १. च्युतसंस्कृति, २. अप्रयुक्त, ३. असमर्थ, ४. निहतार्थ, ५. सन्दिग्ध, ६. अप्रतीत, ७. शिथिल, ८. ग्राम्य, ९. नेयार्थ एवं १०. अन्यसङ्गत ये दस 'पदगत' दोष हैं। इनमें कुछ 'पदांशगत' दोष हैं। 'प्रतिकूलाक्षर' से 'अमतार्थान्तर' तक १८ 'वाक्यमात्रगत' दोष है। 'अपुष्टार्थ' से 'विरुद्धान्योन्यसङ्गति' तक चौदह 'अर्थमात्रगत' दोष हैं।

'अनित्यदोष' उन्हें कहते हैं जो कहीं गुणत्व, कहीं दोषशून्यता एवं कहीं उपादेयता प्राप्त करते हैं। 'अनित्यदोष' ये हैं—१. श्रुतिकटु, २. अप्रयुक्त, ३. निहतार्थ ४. निरर्थक, ५. त्रिविध अश्लील, ६. अप्रतीत, ७. ग्राम्य, ८. न्यून, ९. अधिक, १०. कथित, ११. पतत्प्रकर्ष, १२. सङ्कीर्ण, १३. समाप्तपुनरात्त, १४. कष्ट, १५. प्रसिद्धिविरुद्ध आदि।

'नित्यदोष' ठीक इसके विपरीत होते हैं। जैसे च्युतसंस्कृति आदि।

तृतीय मयूख का नाम 'लक्षणविमर्श' है, क्योंकि उसमें लक्षणों का विचार किया गया है। 'काव्यत्वप्रत्यायकं लक्षणम्' अर्थात् काव्य के स्वरूप की जानकारी जिनसे हमें होती है, वे 'लक्षण' कहलाते हैं। जैसे सामुद्रिकशास्त्रोक्त हस्तरेखाचिह्नों को देखकर मनुष्य का भाग्य निश्चय किया जाता है, उसी प्रकार काव्यलक्षणों से काव्य के स्वरूप का निश्चय किया जाता है। इसमें १. अक्षरसंहति, २. शोभा, १. अभिमान, ४. हेतु, ५. प्रतिषेध, ६. निरुक्त, ७. मिथ्याध्यवसाय, ८. सिद्धि, ९. युक्ति एवं १०. कार्य का निरूपण किया गया है। इसमें ११. कारिकाएँ हैं।

चतुर्थ मयूख 'गुणपरामर्श' नामक है, क्योंकि इसमें गुणों का विवेचन किया गया है। जैसे पुरुष के शौर्य आदि गुण आत्मा के धर्म होते हैं एवं शरीराश्रित कहे जाते हैं, उसी प्रकार काव्य के श्लेष आदि गुण रसादि के धर्म माने जाकर शब्दार्थनिष्ठ कहे जाते हैं। 'रसवृत्तित्वे सति रसोपकारकत्वं गुणत्वम्'। रस में रह कर जो रस का उपकार करते हैं वे 'गुण' कहलाते हैं। ग्रन्थकार के मत में 'श्लेष' से 'उदारता' तक आठ 'शब्दार्थनिष्ठ' रसधर्म गुण हैं। वामनसम्मत 'कान्ति' गुण का अन्तर्भाव 'श्रृङ्गार' रस में एवं 'अर्थव्यक्ति' गुण का अन्तर्भाव 'प्रसाद' गुण में 'पीयूषवर्ष' के मत में है। व्यास, निर्वाह आदि सात गुण ग्रन्थ के मतानुसार वैचित्र्यज्ञापक हैं, गुण नहीं। मयूख में 'गुणालङ्कारभेद' भी प्रतिपादित किया गया है। इसमें १२ कारिकाएँ हैं।

पञ्चममयूख 'अलङ्कारविवेक' संज्ञक है क्योंकि इसमें अलङ्कारसामान्य-लक्षणनिर्वचन के बाद छेकानुप्रास से चित्रालङ्कार तक आठ शब्दालङ्कार एवं उपमा से अत्युक्ति तक ९४ अर्थालङ्कार अर्थात् कुल मिलाकर १०२ अलङ्कार सलक्षण सोदाहरण प्रतिपादित किये गए हैं। शब्द परिवृत्ति को सहन करने वाले अलङ्कार 'शब्दालङ्कार' एवं उसको न सहन करने वाले 'अर्थालङ्कार' कहलाते हैं।

अर्थालङ्कारों में उपमा से सम्पूर्णोपमा तक सात एवं स्मृतिमान को लेकर आठ 'भेदाभेद-प्रधान सादृश्यमूलक' अलङ्कार हैं। रूपक से कैतवापह्नुति तक एवं भ्रान्तिमान् तथा ससन्देह ये चौदह 'अभेदप्रधान आरोपमूलक सादृश्यहेतुक' अलङ्कार हैं। अत्यन्तातिशयोक्ति को छोड़कर उत्प्रेक्षा, गूढोत्प्रेक्षा एवं अक्रमातिशयोक्ति से रूपकातिशयोक्ति तक सात 'अभेदप्रधान अध्यवसायमूलक सादृश्यहेतुक' अलङ्कार हैं। काव्यलिङ्ग एवं अनुमान 'तर्कन्यायमूलक' अलङ्कार हैं। तुल्ययोगिता से गूढाक्षेप तक एवं परिकर व परिकराङ्कुर ये बाईस 'गम्यौपम्याश्रयमूलक' अलङ्कार हैं। विरोध से व्याघात तक एवं अत्यन्तातिशयोक्ति ये चौदह 'विरोधमूलक' अलङ्कार हैं। कारणमाला से उदारसार तक पाँच 'शृङ्खलाबन्धमूलक' अलङ्कार हैं। यथासंख्य से समाधि तक एवं अर्थापत्ति ये आठ 'वाक्यन्यायमूलक' अलङ्कार हैं। प्रत्यनीक से प्रश्नोत्तर तक व मीलित, सामान्य एवं उन्मीलित ये ग्यारह 'लोकन्यायमूलक' अलङ्कार हैं। पिहित से अत्युक्ति तक आठ 'गूढार्थप्रतीतिमूलक' अलङ्कार हैं। 'गूढार्थप्रतीतिमूलक' रसवत् आदि सात अलङ्कार ग्रन्थकार नहीं मानते। 'संश्लेषमूलक' एकप्रधानत्व, संसृष्टि एवं सङ्कर भी ग्रन्थकार के मत से अलंकार नहीं हैं। मालोपमा आदि भी अलङ्कारान्तर नहीं हैं। सब अलङ्कारों का अन्तर्भाव अतिशयोक्ति अलङ्कार में नहीं हो सकता।

इस मयूख में १२५ कारिकाएँ।

षष्ठ मयूख का नाम 'रसादि-रीति-वृत्तिनिर्वचन' है, क्योंकि इसमें रस, भाव, आदि के साथ रीति एवं वृत्तियों का वर्णन किया गया है। इसमें २८ कारिकाएं हैं। इसके अन्तर्गत रससामान्यलक्षण के साथ नव रस, भाव, विभाव, अनुभाव, व्यभिचारिभाव, रीति एवं वृत्तियों का निर्वचन है। 'विशिष्टपदरचना रीतिः'। पदों की विशिष्ट रचना को 'रीति' कहते हैं। इसी को आजकल हिन्दी में 'शैली' कहते हैं। 'पाञ्चालिकी' पाञ्चाल (पञ्जाब) के लोगों को, 'लाटीया' लाट

(गुजरात) के लोगों को, 'गौडीया' गौड (बङ्गाल) के लोगों को एवं 'वैदर्भी' विदर्भ (बराढ) के लोगों को अत्यन्त प्रिय थी। 'विलासविन्यासक्रमो वृत्तिः'। विलासपूर्ण रचना के ढङ्ग को 'वृत्ति' कहते हैं। 'मधुरा', 'प्रौढा', 'पुरुषा', 'ललिता', 'भद्रा' वृत्तियों को ही कोई क्रमशः 'कैशिकी', 'सात्वती', 'अरभटी' एवं 'भारती' के पर्यायशब्दों में नाटकवृत्तियाँ मानते हैं।

सप्तम मयूख की संज्ञा 'ध्वनिप्रतिपादन' है, क्योंकि इसमें मुख्यतः ५१ ध्वनि-काव्य के भेदों का निरूपण किया गया है। इसमें १७ कारिकाएँ हैं। इसके अन्तर्गत शब्दशक्तिस्वरूप अभिधादि वृत्तियों की गणना करके व्यञ्जनाका स्वरूप निर्धारित किया गया है एवं अनन्तर ध्वनि के इक्यावन भेद गिनाए गए हैं। 'वक्तृस्यूत', 'स्वाङ्कुरित', एवं 'वाच्यव्यङ्ग्य' नामक तीन व्यङ्ग्यभेद भी स्वरूपबद्ध किये गये हैं।

अष्टम मयूख 'गुणीभूतव्यङ्ग्यवर्णन' संज्ञक है। इसमें दस कारिकाएँ हैं। प्रथम 'ध्वनि'-'गुणीभूतव्यङ्ग्य' का पार्थक्य समझाकर पश्चात् 'गुणीभूतव्यङ्ग्य' का निरूपण किया गया है। 'सूक्तिपीयूषवर्ष' के मत में 'गुणीभूतव्यङ्ग्य' के तीन ही भेद हैं। 'गुणीभूतव्यङ्ग्य' के अन्य प्रकार मतान्तर सिद्ध हैं।

नवम मयूख 'लक्षणाप्रकरण' नामधेयधारी है। इसमें १६ कारिकाएँ हैं। ग्रन्थकार के मत में लक्षणा के बयालीस भेद हैं। 'सिद्धा' एवं 'साध्या' में विशेषण लगनेपर उनकी संख्या दो से बढ़ जाती है। 'सहेतुका' एवं 'निर्हेतुका' ये अन्य दो लक्षणा भेद हैं। 'काव्यप्रकाश'कार मम्मटभट्ट (ई० १०७०-११०० के बीच में) के मतानुसार लक्षण के केवल छः प्रकार हैं। जयदेव ने नौ लक्षणा-प्रयोजकसम्बन्ध एवं लक्षणा के ६ आश्रय गिनाए हैं। यह लक्षणा अनेक अल-ङ्कारों एवं ध्वनिभेदों की जन्मदात्री है। 'उपादानलक्षणा' 'अर्थान्तरसङ्क्रमित-वाच्यध्वनि' की एवं 'अर्पणलक्षणा' 'अत्यन्ततिरस्कृतवाच्यध्वनि' की बीजभूता है। 'गौणी लक्ष्यवाचकपदामीलना (सारोपा) लक्षणा' 'रूपकालङ्कार' की एवं 'गौणी' लक्ष्यवाचकपदमीलना (साध्यवसाना) लक्षणा 'रूपकातिश-योक्ति' अलङ्कार की प्रसवित्री है 'शुद्धा साध्यवसाना लक्षणा' कार्यकारित्व एवं सामर्थ्यातिशयरूप व्यङ्ग्यप्रदर्शिका है। सामान्यरूप से प्रयोजनवती लक्षणा अविवक्षितवाच्यध्वनि की उपयोगिनी है।

दशम मयूख 'अभिधाशक्तिविचार' संज्ञक है। इसमें छः कारिकाएँ हैं। जाति आदि धर्म भेद के कारण अभिधा भी छः प्रकार की है।

ग्रन्थकार ने प्रथम मयूख में पहले तीन श्लोकों में 'शार्दूलविक्रीडित' वृत्त का आश्रय लिया है एवं मयूखान्त श्लोकों में 'शिखरिणी' वृत्त का आश्रय लिया है। भाषा सरल, प्रसादगुण एवं वैदर्भीरीति से युक्त है।

'चन्द्रालोक' का वैशिष्ट्य

'चन्द्रालोक' में अनेक विशेषताएँ हैं। प्रथम मयूख में शास्त्रीय शब्द के नौ प्रकार, द्वितीय मयूख में शिथिल, अन्यसङ्गत विकृत एवं अनौचित्य ये चार दोष, तृतीय मयूख में 'अक्षरसंहति' से 'कार्य' तक दस काव्यत्वज्ञापक लक्षण; पञ्चम मयूख में अर्थानुप्रास आदि शब्दालङ्कार एवं स्तबकोपमा आभासरूपक आदि अर्थालङ्कार, सप्तम मयूख में 'वक्तृस्यूत' एवं 'स्वाङ्कुरित' ये व्यङ्ग्यभेद; अष्टम मयूख में गुणीभूतव्यङ्ग्य का त्रैविध्य, नवम मयूख में लक्षणा के प्रकार एवं दशम मयूख में 'वस्तुयोग'वाचक एवं 'निर्देश'वाचक शब्द आदि विषय 'सूक्तिपीयूषवर्ष' के प्रतिभागुण के ही विलास हैं।

ग्रन्थकार अनेक विषयों में अन्य आचार्यों के मतों से सहमत नहीं है। जैसे—मीलित एवं सामान्य का भेद मम्मटभट्ट के मत में कुछ और एवं 'सूक्ति-पीयूषवर्ष' के मत में कुछ और है।

चन्द्रालोककार जयदेव

(क) 'चन्द्रालोक'कार जयदेव कौन ?–'चन्द्रालोक' का निर्माण जयदेव कवि ने किया है यह बात सुविदित है। ये जयदेव कौन थे ? इसका हमें विचार करना होगा, क्योंकि भारतवर्ष में जयदेव नाम के पन्द्रह पण्डित हो गए हैं। उनमें से एक नैयायिकों में प्रसिद्ध श्री पक्षधर मिश्र भी जयदेव कहे जाते थे। दूसरे जयदेव ने 'रतिमञ्जरी' नामक कामशास्त्र-विषयक ग्रन्थ का निर्माण किया था। तीसरे जयदेव की उपाधि 'कृष्णदास' थी एवं उन्होंने 'शृगारमाधवीयचम्पू' नामक गद्यपद्यमय काव्य का प्रणयन किया था। चौथे जयदेव 'गीतगोविन्द' नामक गीतिकाव्य के रचयिता एवं ई० द्वादशशतककालीन बङ्गराज लक्ष्मणसेन के राजकवि थे। इनके पिता का नाम भोजदेव एवं माता का नाम रामादेवी था। पाँचवें जयदेव ने 'प्रसन्नराघव' नामक नाटक निर्मित किया था। इसी प्रकार

अन्य दस जयदेव कवि संस्कृतसाहित्येतिहास में विख्यात हैं। इनमें से 'चन्द्रालोक' कार जयदेव कौन थे? इसका हमें विचार करना है।

'प्रसन्नराघव' नाटक पर एवं 'चन्द्रालोक' पर दृष्टिपात करने से हमें यह पता चलता है कि 'प्रसन्नराघव'कार जयदेव के माता-पिता के नाम वे ही थे जो 'चन्द्रालोक'कार जयदेव के माता-पिता के थे।

'प्रसन्नराघव' के श्लोक-खण्ड इस प्रकार हैं—

(१) 'कवीन्द्रः कौण्डिन्यः स तव जयदेव श्रवणयो-
रयासीदातिथ्यं न किमिह महादेवतनयः' ॥

(२) 'लक्ष्मणस्येव यस्याऽस्य सुमित्राकुक्षिजन्मनः।
रामचन्द्रपदाम्भोजे भ्रमद् भृङ्गायते मनः' ॥ १ ॥

'चन्द्रालोक' के श्लोकखण्ड इस प्रकार हैं—

(१) 'महादेवः सत्रप्रमुखमखविद्यैकचतुरः,
सुमित्रा तद्भक्तिप्रणिहितमतिर्यस्य पितरौ।'

(२) जयन्ति याज्ञिकश्रीमन्महादेवाङ्गजन्मनः।'

उपर्युक्त चारों प्रमाणों से सिद्ध होता है कि 'प्रसन्नराघव'कार तथा 'चन्द्रालोक'कार के माता-पिता सुमित्रा-महादेव थे। अतः 'प्रसन्नराघव'कार जयदेव ही 'चन्द्रालोककार' जयदेव थे इसमें सन्देह नहीं।

कोई इन्हें नैयायिक पक्षधर मिश्र मानते हैं। वे इस सम्बन्ध में प्रमाण-स्वरूप 'प्रसन्नराघव' का अधोलिखित गद्य-पद्य-खण्ड देते हैं—

सूत्रधारः—'ननु अयं प्रयाणप्रवीणोऽपि श्रूयते—

'येषां कोमलकाव्यकौशलकलालीलावती भारती,
तेषां कर्कशतर्कवक्रवचनोद्गारेऽपि किं हीयते?।
यैः कान्ताकुचमण्डले कररुहाः सानन्दमारोपिता-
स्तैः किं मत्तकरीन्द्रकुम्भशिखरे नारोपणीयाः शराः? ॥'

इस गद्यपद्यखण्ड को पढ़कर 'सूक्तिपीयूषवर्ष' न्यायमार्तण्ड थे यह बात निश्चितरूपेण सिद्ध होती है, परन्तु इससे वे ही पक्षधर मिश्र थे यह कहना प्रमाद-पूर्ण धृष्टता होगी। क्योंकि जयदेव कवि ई० त्रयोदशशतकवर्ती थे। एवं पक्षधर मिश्र ई० पञ्चदशशतकवर्ती थे। यह बात कालनिर्णय के अवसर पर स्पष्ट होगी। जयदेव कपि कुण्डिनपुर निवासी थे एवं पक्षधर मिश्र मिथिलानिवासी थे।

(ख) जयदेव का परिचय—उपरिलिखित उद्धरणों से यह भी ज्ञात होता है कि ये 'कौण्डिन्य' अर्थात् विदर्भदेशान्तर्गत 'कुण्डिनपुर' के निवासी थे। कोई इन्हें 'कौण्डिन्य'-गोत्रिय भी कहते हैं। इनके पिता महादेवदीक्षित 'सत्रप्रमुखमख विद्यैकचतुर' अथवा 'याज्ञिक' थे अर्थात् यज्ञ, याग आदि के रचयिता थे एवं अग्निहोत्री थे यह बात भी उपरिलिखित उद्धारणों से विदित होती है। ब्राह्मण कुलोत्पन्न जयदेव कविवर अपने को 'सूक्तिपीयूषवर्ष' अथवा 'पीयूषवर्ष' कहते थे, जैसा कि चन्द्रालोक के अधोलिखित पद्यांशों से निश्चित होता है—

(१) 'सूक्तिपीयूषवर्षस्य जयदेवकवेर्गिरः।'
(२) 'पीयूषवर्षप्रभवं चन्द्रालोकमनोहरम्।'
(३) 'चन्द्रालोकमयं स्वयं वितनुते पीयूषवर्षः कृती।'

इनकी माता सुमित्रा अत्यन्त पतिभक्तिपरायण आदर्श नारी थीं, जैसाकि 'सुमित्रा तद्भक्तिप्रनिहितमतिः' इस वाक्य से स्पष्ट है।

(ग) जयदेव का समय—जयदेव ने 'चन्द्रालोक' के नवम मयूख में 'काव्यप्रकाश'कार मम्मटभट्ट के लक्षणभेदों को अधोलिखित कारिकाओं में गिनाया है—

'सारोपाऽध्यवसानाख्ये गौणशुद्धे पृथक् पृथक्।
गौणं सारोपमुद्दिष्टमिन्दुर्मुखमितीदृशम् ॥ १ ॥
गौणं साध्यवसानं स्यादायुरेवेमीदृशम्।
शुद्धं सारोपमुद्दिष्टमायुर्घृतमितीदृशम् ॥ २ ॥
शुद्धं साध्यवसानं स्यादायुरेवेदमीदृशम्।
उपादानार्पणद्वारे द्वे चान्ये इति षड्विधा।
कुन्ता विशन्ति गङ्गायां घोषो निवसतीति च ॥

और भी—'चन्द्रालोक'कार ने 'काव्यप्रकाश'कार के काव्यस्वरूप का खण्डन किया है। 'काव्यप्रकाश'कार का काव्यलक्षण इस प्रकार है—

'तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलङ्कृती पुनः क्वाऽपि।'

इसका खण्डन 'चन्द्रालोक'कार ने प्रथम मयूख में इस कारिका में किया है—

'अङ्गीकरोति यः काव्यं शब्दार्थावनलङ्कृती।
असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलं कृती ? ॥'

मम्मटभट्ट का समय ई० एकादश शतक है, अतः ये एकादश शतक के परवर्ती हैं।

ई० षोडशशताब्दी के केशवमिश्र ने अपने 'अलङ्कारशेखर' के अधोलिखित उद्धरण में उन्हें उत्कलराज का सभापण्डित कहा है—

'ये केऽप्युत्कलभूपते ! तव सभासम्भाविताः पण्डिताः,
पत्रं श्रीजयदेवपण्डितकविस्तन्मूर्ध्नि विन्यस्यति ।'

उसी ग्रन्थकार ने आगे चलकर 'प्रसन्नराघव' का निम्नलिखित पद्य उदाहरण के रूप में उसी ग्रन्थ में लिपिबद्ध किया है—

'कदली कदली, करभः करभः, करिराजकरः करिराजकरः ।
भुवनत्रितयेऽपि बिभर्ति तुलामिदमूरुयुगं न चमूरुदृशः ॥'

इससे ये सोलहवीं शताब्दी के पूर्ववर्ती थे यह निश्चित हो गया ।

१३३० ईसवीं के शिङ्गभूपाल ने अपने 'रसार्णवसुधाकर' में 'प्रसन्नराघव' नाटक का उल्लेख किया है, अतः ये ई० एकादशशतक से त्रयोदशशतक के मध्यवर्ती थे यह सिद्ध हुआ ।

संक्षेप में—विदर्भदेशान्तर्गतकुण्डिनपुरनिवासी 'सूक्तिपीयूषवर्ष' जयदेव कविवर अग्निहोत्री याज्ञिक महादेवदीक्षित के एवं सती सुमित्रा के तनय थे । इन्होंने 'चन्द्रालोक' एवं 'प्रसन्नराघव' का निर्माण किया । ये तर्कशास्त्रवेत्ता भी थे । इनका समय ई० त्रयोदशशतक के करीब है ।

चन्द्रालोक के प्रष्टव्य स्थल

जिन प्रश्नों के उत्तर इस प्रश्नोत्तरी में आए हैं उनके अतिरिक्त भी प्रश्न हो सकते हैं । उनके उत्तर इस भूमिका एवं परिशिष्ट के सहारे लिखने का प्रयत्न करना चाहिए । विषय अधोलिखित हैं—

प्रष्टव्य दोष—१. च्युतसंस्कृति, २. अप्रयुक्त, ३. असमर्थ, ४. निहतार्थ, ५. अनुचितार्थ, ६. अवाचक, ७. सन्दिग्ध, ८. अप्रतीत, ९. नेयार्थ, १०. क्लिष्ट, ११. अविमृष्टविधेयांश, १२. विरुद्धमतिकृत्, १३. प्रतिकूलाक्षर, १४. हतवृत्त, १५. पतत्प्रकर्ष, १६. समासपुनरात्त, १७. अभवन्मतयोग, १८. अपुष्टार्थ, १९. कष्ट, २०. व्याहत एवं २१. अनौचित्य । (इसके अतिरिक्त शब्ददोष एवं अर्थदोष कहाँ होते हैं ? यह पूछ सकते हैं ।)

प्रष्टव्य लक्षण—१. शोभा, २. अभिमान, ३. हेतु, ४. प्रतिषेध एवं ५. कार्य ।

प्रष्टव्य गुण—सभी प्रष्टव्य हैं ।

द्रष्टव्य अलङ्कार—१. अनुप्रास, २. यमक, ३. उपमा, ४. अनन्वय, ५. उपमेयोपमा, ६. रूपक, ७. परिणाम, ८. अपह्नुति, ९. उत्प्रेक्षा, १०. मीलि... ११. सामान्य, १२. अनुमान, १३. काव्यलिङ्ग, १४. अतिशयोक्ति, १५. सम्भावना, १६. तुल्ययोगिता, १७. दीपक, १८. प्रतिवस्तूपमा, १९. दृष्टान्त, २०. निदर्शना, २१. समासोक्ति, २२. श्लेष, २३. अप्रस्तुतप्रशंसा, २४. अर्थान्तरन्यास, २५. पर्यायोक्ति, २६. विभावना, २७. विशेषोक्ति, २८. विषम, २९. विकल्प, ३०. उदात्त इत्यादि ।

अन्य सम्भाव्य अलङ्कारभेद

१. तुल्ययोगिता-दृष्टान्त
२. ,, सहोक्ति
३. ,, श्लेष
४. दीपक-दृष्टान्त
५. प्रतिवस्तूपमा-दृष्टान्त
६. ,, निदर्शना
७. दृष्टान्त-निदर्शना
८. ,, अप्रस्तुतप्रशंसा
९. ,, अर्थान्तरन्यास
१०. व्यतिरेक-प्रतीप
११. सहोक्ति-विनोक्ति
१२. समासोक्ति-रूपक
१३. समासोक्ति-अप्रस्तुतप्रशंसा
१४. खण्डश्लेष-भङ्गश्लेष
१५. खण्डश्लेष-भंगश्लेष-अर्थश्लेष
१६. विरोध-विरोधाभास
१७. ,, असंगति
१८. विभावना-विशेषोक्ति
१९. विषम-सम
२०. कारणमाला-एकावली-मालादीप...
२१. परिसंख्या-प्रश्नोत्तर
२२. समुच्चय-समाधि
२३. व्याजोक्ति-वक्रोक्ति
२४. स्वभावोक्ति-भाविक-उदात्त । इत्यादि

प्रस्तुत प्रश्नोत्तरी

इसके संबंध में हम अधिक क्या कहें ? यह हमारा प्रथम प्रयत्न है । त्रुटियों का होना स्वाभाविक है । अतः इसकी त्रुटियाँ पाठक हमें बतलावें, आगामी संस्करण में उन्हें संशोधित किया जायगा । यदि इसमें कोई आवश्यक विषय छूट गया हो तो उसकी सूचना प्राप्त होनेपर उसे आगामी संस्करण में अवश्य निवि... किया जायगा ।

गुरुपूर्णिमा
सं० २०१४

भवदीय—
जगन्नाथ लक्ष्मणशास्त्री मानवल...
गोविन्द अनन्तराम शास्त्री वेता...

प्रश्न-सूची

पीठिका

३. को नाम 'दोषाङ्कुशः' ? कतिविधश्च सः ? इति सप्रपञ्चं सोदाहरणं विशदीकरणीयम् ।
दोषाणां परस्परमन्तराणि ।

तृतीयो मयूखः

१. 'लक्षण'सामान्यलक्षणं विलिख्य; 'अक्षरसंहति'-'हेतु'-'प्रतिषेध'-'सिद्धि'-'कार्याणां' केष्वलङ्कारेष्वन्तर्भाव ? इति प्रदर्शयत ।
२. 'शोभा'लक्षणं सोदाहरणं प्रदर्श्य, 'ईदृशैश्चरितै राजन् ! सत्यं दोषाकरो भवान्' इत्युदाहरणं कस्य लक्षणस्य ? इति लिखत ।

चतुर्थो मयूखः

१ 'गुण'सामान्यलक्षणं प्रदर्श्य, 'गुणैः रसानां सम्बन्धोऽस्ति न वा ? अस्ति चेत्, कीदृशः ?' इति विस्पष्टीक्रियताम् ।
२. 'प्रसाद'लक्षणं सोदाहरणं प्रदर्श्य, 'वयस्य ! पश्य पश्याऽस्याश्चञ्चलं लोचनाञ्चल'मित्यत्र स्थितं गुणं लक्षणसङ्गमनपूर्वकं प्रकटयत् ।
३. वामनोक्त'कान्त्य''र्थव्यक्ति'गुणयोरन्तर्भावः कुत्र ? कथञ्च स ? इति प्रतिपादयत ।
४. गुणाऽलङ्कारयोर्मिथो भेदं प्रदर्शयत ।
५. 'व्यास'-'निर्वाहा'ऽऽदिसप्तगुणानां लक्ष्यसङ्गमनपूर्वकं लक्षणानि प्रतिपाद्य, तेषामस्तित्वं ग्रन्थकृन्मतेन वर्तते न वेति सोपपत्तिकं साधयत ।

पञ्चमो मयूखः

१. 'अलङ्कार'सामान्यलक्षणं प्रतिपाद्य, शब्दार्थोभयालङ्काराणां भेदे किं बीजमित्युल्लेखनीयम् ।
२. 'परिणाम'लक्षणं लक्ष्यसङ्गमनपूर्वकं प्रकाश्य, 'सिक्तं स्फटिककुम्भान्तः स्थितिश्वेतीकृतैर्जलैः । मौक्तिकं चेल्लतां सूते तत्पुष्पैस्ते समं यशः ॥' इत्यत्र कोऽलङ्कारः ? इति सोपपत्तिकं विवृणुत ।

अष्टमो मयूखः

१. 'ध्वनि' गुणीभूतव्यङ्ग्ययोः' स्वरूपनिरूपणपूर्वकं मिथो भेदं प्रतिपाद्य गुणीभूतव्यङ्ग्यभेदान् प्रदर्शयत।

२. गुणीभूतव्यङ्ग्यभेदेषु 'अपराङ्गव्यङ्ग्यं' लक्ष्यलक्षणविवेचनपुरस्सरं प्रतिपाद्य, 'संश्रित्य तरणिं धीरास्तरन्ति व्याधिवारिधीन् इत्यत्र' गुणीभूतव्यङ्ग्यकाव्यस्य को भेदः ? इति सहेतुकं निरूपणीयम्।

नवमो मयूखः

१. 'लक्षणा' सामान्यलक्षणं विवृत्य तद्भेदगणनां कुर्वन्तु।

२. 'लक्षणाभेदेषु' शुद्धागौण्योः सारोपासाध्यवसानयोश्च लक्षणविवेचनपुरस्सरं मिथो भेदं प्रतिपाद्य, यथासम्भवमुदाहरणेषु स्पष्टयत।

३. 'सौन्दर्येणैष कन्दर्पः, सा च मूर्तिमती रतिः' इत्यत्र को लक्षणाभेदो ? इति सप्रपञ्चं निगदत।

दशमो मयूखः

१. सभेदं लक्ष्यसङ्गमनपूर्वक'मभिधा'वृत्तिलक्षणं विवेचनीयम्।

२. 'न योगादेरायतनं, न संकेतनिकेतनम्। वृत्त्या निर्देशशब्दोऽयं मुख्यया स्वाभिधेयया ॥' कारिकेयं व्याख्येया।

परिशिष्टम्

१. विषयानुक्रमणिका

२. उदाहरणानुक्रमणिका

३. तालिका

॥ श्रीः ॥

चन्द्रालोकरहस्यम्

प्रथमो मयूखः

श्रीमतः सादरं नत्वा श्रीगणेश्वरगीर्गुरून् ।
चन्द्रालोकरहस्यस्य क्रियतेऽत्र प्रकाशनम् ॥

१ प्रश्नः—काव्यस्य प्रयोजनं प्रतिपाद्य कान्तासम्मितोपदेशस्योपदेशान्तरतो वैशिष्ट्यं सोपपत्तिकं निरूपयत ।

उत्तरम्—चन्द्रालोककारमतेन—अर्थप्राप्तिः, कान्तासम्मितोपदेशप्राप्तिः, यशःप्राप्तिश्चेति प्रयोजनत्रयम् । 'युक्त्यास्वाद्यलसद्रसैकवसतिः' इत्यादौ कारिकायां प्रयोजनत्रयस्यैवोल्लेखात् । पूर्णा कारिका चेयम्—

'युक्त्यास्वाद्यलसद्रसैकवसतिः साहित्यसारस्वत-
क्षीराम्भोधिरगाधतामुपदधत्सेव्यः समाश्रीयताम् ।
श्रीरस्मादुपदेशकौशलमयं पीयूषमस्माज्जग-
ज्जाग्रद्भासुरपद्मकेशरयशःशीतांशुरस्माद् बुधाः' ॥

अस्यास्तात्पर्यञ्चेदम्—रसात्मकं काव्यं बुधाः आस्वादयन्तु, तस्मात् श्रीहर्षा देर्धावकादीनामिवार्थप्राप्तिः, 'नायकवत्सत्कार्ये वर्तितव्यं न प्रतिनायकवदसत्कार्ये' इत्यादिरूप-कान्तासम्मितोपदेशप्राप्तिः, कालिदासादीनामिव यशःप्राप्तिश्च प्रजायते । कान्तासम्मितोपदेशश्च प्रभुसम्मितोपदेश-सुहृत्सम्मितोपदेशाभ्यां विलक्षण एव । अयं भावः—उपदेशस्तावत् त्रिधा । प्रभुसम्मितः, सुहृत्सम्मितः । कान्तासम्मितश्चेति । तथाहि—शब्दप्रधान—वेदादिशास्त्रोक्तोपदेशः प्रभुसम्मितः । यथा—राजा इष्टसाधने अनिष्टसाधने निष्फले च कर्मणि जनान् प्रवर्तयति, तथैव वेदादिशास्त्रं ज्योतिष्टोमादाविष्टसाधने श्येनयागादावनिष्टसाधने सन्ध्यावन्दनादिरूपफलरहिते च कर्मणि प्रवर्तयति । अर्थप्रधान—पुराणेतिहासाद्युपदेशः सुहृ-

त्सम्मितः। यथा—सुहृद् एवं कृते एवं भवतीति वास्तविकीं स्थितिं बोधयति तथैव पुराणेतिहासादिरपि। तात्पर्यप्रधानकाव्योक्तोपदेशः कान्तासम्मितः। यथा कान्ता पूज्यपित्राद्यधीनमपि प्रियं कान्तं निजचातुर्येण स्वानुकूलं विधायोपदिश तथैव काव्यमपि नीतिशास्त्रपराङ्मुखान् कोमलकान्तपदोपदर्शित-शृङ्गारादिसरं स्वानुकूलं विधाय रामादिवद्वर्तितव्यं न रावणादिवद् इत्याद्युपदिशति।

तथा चायं सिद्धान्तो निर्गलितः—यद् वेदादिशास्त्रं कर्मादिशति न तु के प्रदर्शयति, पुराणेतिहासादिः सदसन्मार्गमात्रं प्रदर्शयति न त्वादिशति। तृती ताभ्यां विलक्षणः, यतः स हि सरसकोमलवचोभिः स्वाभिमुखीकृत्योपदेशं ग्राहय

२ प्रश्नः—(क) कविताविर्भावे किं प्रधानं कारणम्? कानि च सहका कारणानीति सप्रमाणं प्रदर्श्यताम्।

(ख) काव्यबीजं तत्सहकारिकारणान्यपि च समुल्लेख्यानि।

उत्तरम्—कविताविर्भावे प्रधानं कारणं प्रतिभा। 'प्रज्ञा नवनवोन्मेषशालि प्रतिभोच्यते' इति तल्लक्षणम्। सहकारिकारणे श्रुतं=शास्त्रं व्याकरण कलाचतुर्वर्गगजतुरगखड्गादिलक्षणरूपम्, 'अभ्यासः' पौनःपुन्येन प्रवृत्तिश्चे एनमेव सिद्धान्तं 'प्रतिभैव श्रुताभ्याससहिता कवितां प्रति। हेतुर्मृदम्बुसम बीजपङ्क्तिर्लतामिव'। इत्यादिकारिकया निबध्नातिस्म पीयूषवर्षः। भावश्चायम्—यथा लतां प्रति बीजपङ्क्तिः प्रधानं कारणं मृत्तिका जलञ्च कारिकारणे, तथैव कवितां प्रति प्रतिभा प्रधानं कारणम्, श्रुताभ्यासौ च कारिकारणे। अत्र 'एव'कारः प्रतिभायाः प्राधान्यं द्योतयति, श्रुताभ्याससहि त्यत्र 'सहित' पदं समस्तत्वद्योतनार्थम्। तृणारणिमणिन्यायेन हेतुत्वात् व्यभि एवेति दण्डचक्रादिन्यायेनैव हेतुताऽत्र। अयमभिप्रायः—यथा अग्निप्रज्वालनं तृणं वाऽरणिर्वा मणिर्वा हेतुस्तथाऽत्र न, अपि तु यथा घटं प्रति दण्डचक्र हेतवस्तथा कवितां प्रति प्रतिभाश्रुताभ्यासाः।

३ प्रश्नः—(क) काव्यलक्षणं सपदकृत्यमुल्लिख्य चन्द्रालोककार 'निरलङ्कारौ शब्दार्थौ काव्यं भवितुमर्हतः न वे'ति प्रतिपादनपुरस्सरं तद्ग कारमतं भवते समीचीनं प्रतिभाति न वेति स्वमत्यनुसारं सबीजं समुल्लेख्य

(ख) पराभिमतं काव्यलक्षणं खण्डयित्वा ग्रन्थोक्तं काव्यलक्षणं पदकृत्यस निरूप्यताम्।

(ग) काव्यलक्षणं पर्यालोचयता ग्रन्थकर्त्रा कस्य मतं कथं खण्डित निर्दिश्य सपदकृत्यं काव्यलक्षणं निगदत।

दोषः, अस्यैव 'विधेयाविमर्श' इति नामान्तरम् । उदाहरणेऽस्मिन् विशिखप्रायेति पदं विधेयम् तच्च समासेन पिहितमिति गुणीभूतम् । तस्य कटाक्षविशेषणत्वेन निर्देशात् क्रियान्वयानुपत्तेः ।

एतत्सदृशा अपि प्रश्नाः सम्भवन्ति । यथा—नेयार्थलक्षणमुदाहरणसंगमनपूर्वकं ग्रन्थमनुसृत्य प्रतिपाद्य, 'न मामङ्गद ! जानासि रावणं रणदारुण'-मित्यत्र स्थितं दोषं सोपपत्तिकं निरूपयत । तेषामुत्तराणि च परिशिष्टदर्शितविषयानुक्रमणिकासाहाय्येन अनयैव रीत्या देयानि ।)

३ प्रश्नः—को नाम दोषाङ्कुशः ? कतिविधश्च सः ? इति सप्रपञ्चं सोदाहरणं विशदीकरणीयम् ।

उत्तरम्—दोषाणाम् अङ्कुशः निवारकः । तल्लक्षणं यथा–'दोषमापतितं स्वान्ते प्रसरन्तं विश्रृङ्खलम् । निवारयति यस्त्रेधा 'दोषाङ्कुश'मुशन्ति तम्' । अयं भावः—यः स्वान्ते मनसि आपतितं ज्ञातं विश्रृङ्खलम् अप्रतिवन्धं निरन्तरमिति यावत्, प्रसरन्तं प्रसृतं दोषं त्रेधा प्रकारत्रयेण निवारयति दूरीकरोति बुधाः, तं दोषाङ्कुशमुशन्ति इति कारिकार्थः । तथा च–यः काव्ये दोषाणां गुणत्वं निर्दोषत्वञ्च प्रतिपादयति स दोषाङ्कुशः । सः त्रिधा परिणमति ।

(१) केचिद्दोषा गुणाः भवन्ति, यथा—ग्राम्यत्वादयः हास्यादिरसव्यञ्जकत्वाद् गुणाः भवन्ति । (२) केचिन्निर्दोषा भवन्ति, यथा लोके विरुद्धवर्णनपरकः विद्याविरुद्धत्वादयः कविसम्प्रदायप्रसिद्धत्वान्निर्दोषा भवन्ति (३) केचिदुपादेयाः भवन्ति, यथा—निरर्थकत्वादयः श्लेषाद्यलङ्कारे उपादेयाः भवन्ति ।

तथा चोक्तं ग्रन्थकारेण—

'दोषे गुणत्वं तनुते दोषत्वं वा निरस्यति ।
भवन्तमथवा दोषं नयत्यत्याज्यतामसौ' ।।

तत्र प्रथमस्योदाहरणं यथा—

'मुखं चन्द्रश्रियं धत्ते श्वेतश्मश्रुकराङ्कुरैः' । वृद्धमुखवर्णनमिदम् । एतद्विवृण्वते—श्वेतश्मश्रूण्येव कपोलचिबुकस्थितश्वेतालका एव कराङ्कुराः किरणप्ररोहास्तैः मुखं वृद्धवदनं चन्द्रश्रियं चन्द्रशोभां धत्ते बिभर्ति । अत्र 'श्वेतश्मश्रु' पदप्रयोगात् ग्राम्यत्वदोषः । स च विदूषकोक्तेर्हास्यरसपोषकत्वाद् गुणः ।

उक्तं हि कविना अस्यैवोत्तरार्धे—

'अत्र हास्यरसोद्देशे ग्राम्यत्वं गुणतां गतम्' ।

द्वितीयस्योदाहरणं यथा—

'तव दुग्धाब्धिसम्भूतेः कथं जाता कलङ्किता' ।

हे चन्द्र ! दुग्धाम्बुधिरेव क्षीरसमुद्र एव सम्भूतिरुत्पत्तिस्थानं यस्य सः त क्षीरसमुद्रोत्पन्नस्य, तव कलङ्किता कलङ्कित्वं कथं केन प्रकारेण जाता उ न्नेति सामान्योऽर्थः अत्र विद्याविरुद्धदोषः कविप्रसिद्धिवशात् अदोषतां-निर्दो गतः प्राप्तः । अयं भावः—क्षीरोदजश्चन्द्रः अकलङ्कः, सकलङ्कस्त्वत्रिनेत्रज-इ पुराणादौ प्रसिद्धिः । कविसम्प्रदाये तु द्वयोरैक्यं कलङ्कित्वञ्च । तथा च क्षी सागरोत्पन्नचन्द्रस्य कलङ्कित्ववर्णनेन विद्याविरुद्धत्वदोषः कविसमयप्रसिद्धत्वा दोषतां भजति, न च गुणतां प्राप्नोति । वैचित्र्याभावात् ।

तृतीयस्योदाहरण यथा—

'दधार गौरी हृदये देवं हिमकराङ्कितम्' ।

गौरी तदाख्या नायिका मकराङ्कितं मत्स्यचिह्नितं देवं मकरध्वजं मद मित्यर्थः । दधार । पार्वतीपक्षे—हिमकराङ्कितं हिमकरेण चन्द्रेणाङ्कितं चिह्नि चन्द्रशेखरं शङ्करमित्यर्थः । दधार । अत्र वाक्यश्लेषालङ्कारः । कामप 'ही'ति निरर्थकपदं न त्याज्यम् । तद्विना श्लेषस्याप्रसङ्गः । तस्या श्लेषनिर्वाह त्वेन न त्याज्यता । 'अत्र श्लेषोदयान्नैव त्याज्यं हीति निरर्थकम्' इत्यनेन सं मितमपि लक्ष्यं जयदेवेन ।

अथ दोषाणां परस्परमन्तराणि लिख्यन्ते

(१) श्रुतिकटु-प्रतिकूलाक्षरयोः—

कर्णकठोरवर्णसद्भावहेतुकरसोद्बोधप्रतिबन्धकत्वं श्रुतिकटुत्वम् । यथा—'का तर्थ्यं'मिति पदे तकाररेफथकाराणां संयोगात् रसोद्बोधरूपं कार्यं प्रतिबध्यते प्रतिकूलाक्षरत्वं नाम प्रकृतरसप्रतिबन्धप्रतिकूलरसाऽऽनुकूलवर्णसद्भावनम् । यथा 'न मामङ्गद ! जानासी'त्यत्र केवलं प्रस्तुतवीररसाऽनुकूलाक्षराभाव एव न अपि तु विरोधिश्रृङ्गाररसोचितकोमलाक्षरविन्यासः । तथा च—यद्यपि द्वयोरपि दूषकताबीजमनुचितवर्णसत्ता, तथापि श्रुतिकटुत्वे (दुःश्रवत्वे वा) केवलं कर्णकठोर वर्णानां सत्ता, प्रतिकूलाक्षरे तु प्रकृतरसविरोधिवर्णानां सत्ता इत्यनयोरन्तरम् अपि च—श्रुतिकटुत्वं श्रृङ्गारादिमधुररसास्वादप्रतिबन्धजन्यम्, प्रतिकूलाक्षरत्वं सकलरसाऽऽस्वादप्रतिबन्धजन्यमिति पर्यालोचनीयम् ।

(२) च्युतसंस्कृतित्वाप्रयुक्तत्वयोः—

च्युतसंस्कृतित्वं नाम व्याकरणनियमोल्लङ्घनम् । यथा—संविद्रते व्याकरण-विरुद्ध'मित्यादौ 'संविद्रते' इति पदं संस्कृतिरहितम् । तथाहि—संपूर्वकात् 'विद्' धातोः 'विदिप्रच्छिस्वरतीनामुपसंख्यान'मिति वार्तिकेनाऽऽत्मनेपदविधानेऽपि 'समो गम्ययृच्छिभ्यामित्येनाकर्मकत्व एव तत् । अत्र तु सकर्मकोऽयं धातुः । अप्रयुक्तत्वं नाम वैयाकरणादिभिः स्वीकृतस्यापि आलङ्कारिकैरनादृतस्य पुल्लिङ्गतादेः प्रयोगः। यथा—'दैवत' पदं यद्यपि पुंल्लिङ्गनपुंसकलिङ्गयोः प्रयुज्यते, तथापि काव्येऽदः पुल्लिङ्गतयाऽस्वीकृतमेव। तथा च—यद्यपि द्वयोरपि दूषकताबीजं सम्प्रदायनियमोल्लङ्घनमेव, तथापि च्युतसंस्कृतित्वं व्याकरणशास्त्रनियमोल्लङ्घनजन्यम्, अप्रयुक्तत्वन्तु अलङ्कारशास्त्रनियमोल्लङ्घनजन्यमित्यनयोर्वैभिन्न्यम् ।

(३) अप्रयुक्तत्वासमर्थत्वयोः—

अप्रयुक्तत्वं नाम तथाऽऽम्नातत्वेऽपि काव्यानादृतत्वम् । यथा—'पद्म'शब्दः 'वा पुंसि पद्मं नलिन'मिति कोशप्रामाण्यात् पुंल्लिङ्गनपुंसकलिङ्गत्वेन स्वीकृतोऽपि काव्यज्ञैः पुंल्लिङ्गतयाऽनादृत एव । असमर्थत्वं नाम विवक्षितार्थपरिपठितेऽप्यपि तदर्थप्रतिपादनाशक्तत्वम् । यथा—'स हन्ति हन्ते'त्यत्र गम्यर्थे हन्तेः प्रयोगः । तथा च—उभयोरपि सम्प्रदायनिषिद्धप्रयोग एव दूषकताहेतुः, तथापि अप्रयुक्ते दैवतादि-शब्दाः पुंल्लिङ्गतादित्वेन सर्वथाऽस्वीकृताः, असमर्थे तु गत्याद्यर्थकहन्त्यादेः पद्धति—जङ्घा—जघनेत्यादिषु प्रयोगानुमित्या क्वचिन्निषेधाभावोऽपि इत्यनयोर्भेदः ।

(४) अप्रयुक्तत्वनिहतार्थत्वयोः—

अप्रयुक्तस्वरूपं अप्रयुक्तदैवतादिशब्दे पुंल्लिङ्गतादिकमित्युक्तम् । निहतार्थत्वं नाम प्रसिद्धाप्रसिद्धोभयार्थवाचिनः शब्दस्याप्रसिद्धेऽर्थे प्रयोगः । यथा-रुधिर—रागार्थवाचिनः शोणितशब्दस्याप्रसिद्धरागार्थे प्रयोगः । तथा च—यद्यपि उभयोरपि दूषकतानिमित्तमप्रसिद्धप्रयोग एव, तथापि अप्रयुक्ते अप्रसिद्धपुल्लिङ्गतादेः प्रयोगः, निहतार्थे तु अप्रसिद्धाभिधेयार्थप्रयोग इत्यनयोर्वैमत्यम् ।

(५) अप्रयुक्तत्वाप्रतीतत्वयोः—

अप्रयुक्तलक्षणं लक्ष्यसंगमनपूर्वकं पूर्वमेव लक्षितम् । अप्रतीतत्वं नाम शास्त्रविशेषस्थितपारिभाषिकपदोपन्यासनम् । यथा—सांख्यशास्त्रस्य वीतानुमान' शब्दप्रयोगः । उभयोरपि दूषकताबीजं झटिति शाब्दबोधाभावात् श्रोतुर्वैमुख्यम् । भेदस्त्वयम्—अप्रयुक्तेऽलङ्कारशास्त्रातिरिक्तशास्त्रान्तरप्रसिद्धपुंल्लिङ्गतादेःप्रयोगः, अप्रतीते तु शास्त्रविशेषस्थितशब्दानामेव प्रयोगः ।

(६) अप्रयुक्तत्व-विद्याविरुद्धत्वयोः—

अप्रयुक्तस्वरूपं पूर्वं दर्शितमेव। विद्याविरुद्धत्वं नाम शास्त्रानुक्तवर्णन
यथा—'केतकीशेखरे शम्भो'रित्यादि वर्णनं पुराणशास्त्राननुकूलमेव। तथा च '
वैयाकरणविरोधाऽऽलङ्कारिकविरोधयोर्विद्याविरोधत्वेन एतयोरैक्यसम्भवे
शब्दार्थरूपादाश्रयभेदाद्भेदः।

(७) असमर्थत्व-निहतार्थत्वयोः—

उभयोरपि लक्षणे सोदाहरणे पूर्वमेव प्रदर्शिते। उभयोरपि दूषकता
यद्यपि प्राकरणिकार्थप्रतिबन्ध एव, तथाऽप्यसमर्थे सर्वथा प्रकृतार्थानुपस्थि
निहतार्थे तु विलम्बेन प्रकृतार्थोपस्थितिरिति भेदः।

(८) असमर्थत्वावाचकत्वयोः—

असमर्थदोषस्वरूपं सोदाहरणं पूर्वमेव निरूपितम्। अवाचकत्वं नाम
क्षितार्थप्रकाशकोपसर्गादिसंसर्गराहित्येऽपि तत्संसर्गजन्यार्थप्रकाशकतया त
क्तत्वम्। यथा—'विदधद्' इत्यर्थे 'दधद्' इति प्रयोगः। तथा च यद्यप्युभयो
दूषकतावीजं व्याकरणनियमोल्लङ्घनमेव तथापि असमर्थे पद्धतिजङ्घाजघना
हन्त्यादेः गत्याद्यर्थे शक्तिस्वीकारः। अवाचके तु न तथा इति विवेकः।

(९) असमर्थत्वाप्रतीतत्वयोः—

उभयोरपि लक्षणे सोदाहरणे पूर्वमेव प्रदर्शिते। उभयोरपि दूषकता
प्रसिद्धाप्रसिद्धोभयार्थकशब्दस्याप्रसिद्धेऽर्थे प्रयोगः। परमसमर्थे विवक्षिता
सर्वेषामेवानुपस्थितिः, अप्रतीते तु तत्तच्छास्त्रज्ञानामेव तस्यानुपस्थितिः।

(१०) निहतार्थत्व-नेयार्थत्वयोः—

निहतार्थलक्षणं लक्ष्यसंगमनपूर्वकं पूर्वं लक्षितम्। नेयार्थत्वं नाम
प्रयोजनराहित्यपूर्वकलक्षणाजन्यार्थप्रकाशनम्। यथा—'हिमांशोर्हरिधिक्क
जागरे यामिकाः कराः'। अत्र धिक्कारयामिकादिशब्देषु लक्षणाधिक्यं रूढि
जनाभ्यां विनैव सम्पादितम्। तथा च—उभयोरपि दूषकतावीजं विल
प्राकरणिकार्थोपस्थितिः। भेदस्त्वित्थम्—योगमात्राश्रयेण कुमुदादौ प्र
पङ्कजादिपदे निहतार्थत्वम्, रूढ्यर्थस्य द्रुतमुपस्थितेः। लक्षणया प्रयुक्ते त्व
प्रयोजने नेयार्थत्वं दोषः।

(११) अनुचितार्थत्व-विरुद्धमतिकृतोः—

अनुचितार्थत्वं नाम विवक्षितार्थतिरस्कारकद्वितीयार्थव्यञ्जकत्वम्। य
'इयमद्भुतशाख्यग्रकेलिकौतुकवानरी' इत्यत्र केलिकौतुकाद्यतिशयप्रतिपादने

वानरीत्वारोपोऽनुचित एव । विरुद्धमतिकृद्दोषस्तु विवक्षितार्थप्रतिकूल-द्वितीयार्थोपस्थितिर्यत्र सः । यथा—'अपराधीन' पदं 'स्वतन्त्र' इत्यर्थे प्रयुक्तमपि 'द्वितीयाधीन' इति प्रतिकूलमर्थं द्योतयति । यथा च—द्वयोरपि दूषकताबीजम-विवक्षितद्वितीयार्थव्यक्तिरेव । अन्तरन्त्विदम्—अनुचितार्थदोषे अविवक्षितद्वितीयार्थव्यक्तिः पदान्तरसापेक्षा, विरुद्धमतिकृद्दोषे तु पदान्तरनिरपेक्षा ।

(१२) निरर्थकत्वाधिकपदत्वयोः—

निरर्थकत्वं नाम पादाक्षरसंख्याभरणमात्रफलकत्वम् । यथा—'तु ही' इत्यादि । अधिकपदत्वं नाम अविवक्षितपदोपस्थापनम् । यथा—'भवतः शत्रून् दशत्यसिलताफणी'' इत्यत्र 'लता' पदमनपेक्षितमेव । उभयोरपि दूषकताबीजमनपेक्षितपदोपस्थापनेन विलम्बेन प्रकृतार्थोपस्थितिः । परं निरर्थकदोषे अविवक्षितपदमर्थ-रहितं वर्तते, अधिकपदे तु अर्थसहितमिति वैजात्यम् ।

(१३) अश्लीलत्व-ग्राम्यत्वयोः—

असभ्यार्थान्तरव्यञ्जकत्वमश्लीलत्वम् । यथा—'आह्लादसाधनं वायुः कान्तानाशे भवेत् कथ'मित्यत्र निमित्तपवनवियोगार्थकतया प्रयुक्ताः साधनवायुविनाश-शब्दाः पुल्लिंगापानवायुमरणार्थकत्वेन प्रतीताः सन्तः व्रीडा जुगुप्साऽमङ्गलजनकाः सञ्जायन्ते । अविदग्धमात्रप्रयोज्यं ग्राम्यम् । श्रोणी-नितम्बादिशब्देषु प्रयोक्तव्येषु कट्यादिपदानां प्रयोगः । उभयोरपि दूषकताबीजं श्रोतुर्वैमुख्यमेव । तथा च—अश्लीले असभ्यार्थोपस्थितिः, ग्राम्ये तु न तथेति भेदः ।

(१४) क्लिष्टत्वस्य निहतार्थत्वासमर्थत्वयोश्च—

क्लिष्टत्वं नाम समासहेतुकपदार्थोपस्थितौ विलम्बित्वम् । निहतार्थत्वासमर्थत्वयोस्तु पदार्थोपस्थितावेव विलम्ब इति भेदः ।

(१५) अविमृष्टविधेयांशत्वाभवन्मतयोगत्वयोः—

अविमृष्टविधेयांशत्वन्नाम विधेयपदस्य गौणत्वप्रापणम् । यथा 'विशन्ति-विशिखप्रायकटाक्षाः कामिनां हृदि' अत्र कटाक्षा उद्देश्यभूताः विशिखवत्प्रवेशश्च विधेयभूतः । विशिखशब्दश्च कटाक्षविशेषणतया उपात्तत्वेन प्रवेशनक्रियायामन्वेतुमसमर्थः । अभवन्मतयोगत्वं नाम—अभीष्टतात्पर्यविषयान्वयनिर्वाहासम्भवत्वम् । यथा—'येन बद्धोऽम्बुधिर्यस्य रामस्यानुचरा वय'मित्यत्र येनेति पदस्य 'रामस्ये'-त्यनेनान्वयोऽभिमतः, स च वाक्यभेदाद्विभक्तिभेदाच्चानुपपन्नः । उभयोरपि दूषकताबीजं वाक्यासंगत्या तात्पर्यानुपपत्तिरेव । अन्तरन्त्विदम्—अविमृष्टविधेयांशे

विधेयपदमेव दुष्टं (न तु वाक्यम्), अभवन्मतयोगे तु प्रधानस्य प्राधान्येनाप्रती सर्वेषां तदङ्गतया अप्रतीतिरिति सर्ववाक्यार्थविरोधावभास इति भेदः।

(१६) विरुद्धमतिकृत्–सन्दिग्धयोः—

विरुद्धमतिकृल्लक्षणन्तु सलक्ष्यं पूर्वमेव लक्षितम्। सन्दिग्धत्वं नाम—तात सन्देहविषयीभूतार्थद्वयसत्त्वम्। यथा—'नद्यां यान्ति पतत्रिणः' अत्र 'पतत्रि नद्यां=सरिति यान्ति' इत्यर्थो विवक्षितः उत 'द्यां=स्वर्गं न यान्ति' इत्यर्थः इति सन्देहः। द्वयोरपि दूषकताबीजमर्थद्वयसत्त्वैव। परन्तु विरुद्धमतिकृति वि द्धार्थप्रतीतिः, सन्दिग्धे तु न तथेति तयोरन्तरम्।

(१७) अश्लीलानुचितार्थाभ्यां विरुद्धमतिकृतः—

त्रयाणामपि लक्ष्यलक्षणानि पूर्वमेव प्रकटीकृतानि। त्रयाणामपि दूषकता रर्थद्वयसत्त्वैव। किन्तु अश्लीलानुचितार्थयोरर्थानां परस्परप्रतिबन्धकताया अभा विरुद्धमतिकृति तु विवक्षितार्थप्रतिबन्धकद्वितीयार्थस्यास्तित्वमिति भेदः।

(१८) विरुद्धमतिकृदमतार्थान्तरयोः—

विरुद्धमतिकृतः लक्ष्यलक्षणे पूर्वमेव प्रकाशिते। अमतार्थान्तरत्वन्नाम विवक्षितार्थप्रतिकूलाविवक्षितद्वितीयार्थसत्त्वम्। यथा—'त्यक्तहारमुरः कृ शोकेनाऽऽलिङ्गिताऽङ्गना' इत्यत्र 'नायिका शोकविह्वला सती हारादिकं न तत्या इति विवक्षितार्थस्य प्रतिकूलः 'शोकरहितेन नायकेन कामिनी हारादिकमवत आलिङ्गिता' इति द्वितीयार्थो वर्तते। द्वयोरपि दोषहेतुरनेकार्थशालित्वमेव तथापि विरुद्धमतिकृति द्वितीयोऽर्थः विवक्षितप्रथमार्थप्रतिबन्धकः, अमतपर तु व्यङ्ग्यरसयोरेव विरोध इति भेदः।

(१९) विरुद्धमतिकृद्विरुद्धान्योन्यसंगतित्वयोः—

विरुद्धमतिकृन्निरूपणं सोदाहरणं निरूपितमेव पूर्वम्। विरुद्धान्योऽन्यसंगति नाम विवक्षितार्थविरुद्धसंगतित्वम्। यथा—'सरोजनेत्रपुत्रस्य मुखेन्दुमवलोक त्यत्र 'सरोजनेत्र'-'मुखेन्दु'पदयोः सङ्गतिर्विरुद्धा, यतः सति चन्द्रे कमलं सं चितं सञ्जायते। द्वयोरपि दूषकताबीजं विरुद्धार्थप्रकाशनम्। तथापि विरुद्धम कृति द्वितीयार्थ एव विवक्षितार्थप्रतिबन्धकः, विरुद्धान्योन्यसंगतौ तु द्वयोः पद योस्सङ्गतिरेव विरुद्धेति तस्माद्भेदः।

(२०) विरुद्धान्योन्यसंगति-व्याहतत्वयोः—

विरुद्धान्योन्यसंगतिः प्रदर्शिता पुरा। व्याहतत्वन्नाम पूर्वापरार्थयोः परस्प विरोधभावित्वम्। यथा—'सहस्रपत्रमित्रं ते वक्त्रं केनोपमीयते' अत्र कमलोप

दर्श्यापि पुनस्तदुपमानिषेधः क्रियत इति व्याहतता। द्वयोरपि दोषहेतुरर्थद्वयस्य रस्परविरोधभावित्वमेव। परन्तु विरुद्धान्योन्यसंगतौ द्वितीयपदार्थः प्रथमपदार्थ-संगतिं बाधते, व्याहते तु प्रथमपदार्थः द्वितीयपदार्थसंगतिमिति द्वयोर्भेदः।

—: ० :—

तृतीयो मयूखः

१ प्रश्नः—'लक्षण'सामान्यलक्षणं विलिख्य—'अक्षरसंहति-हेतु-प्रतिषेध-सिद्धि-युक्ति-कार्याणां केष्वलङ्कारेष्वन्तर्भावः' इति प्रदर्शयत।

उत्तरम्—'निर्दोषा लक्षणवती सरीतिगुणभूषणा। सालङ्काररसानेकवृत्ति-र्वाक्काव्यनामभाक्' इति काव्यलक्षणानुसृत्या दोषनिरूपणानन्तरं लक्षणप्रतिपाद-नावसरे प्रथमं लक्षणं तावत् किमिति जिज्ञासा प्रादुर्भवति। 'लक्ष्यते' काव्य-स्वरूपमेभिरिति 'लक्षणानि'। तथा च—काव्यत्वप्रत्यायकत्वं लक्षणत्वमिति लक्षणसामान्यलक्षणम्। अक्षरसंहतेरन्तर्भावः समासोक्त्यलङ्कारे, हेतोरपह्नुता-वन्तर्भावः, प्रतिषेधस्य हेत्वपह्नुत्यलङ्कारेऽन्तर्भावः, सिद्धेस्तुल्ययोगितायामन्त-र्भावः, युक्तेर्व्यतिरेकालङ्कारे, कार्यस्य च परिणामेऽन्तर्भावः। अन्याचार्यमतेनैव षण्णामेतेषामन्तर्भावः अलङ्कारषट्के न तु ग्रन्थकृन्मतेन।

२ प्रश्नः—शोभालक्षणं सोदाहरणं प्रदर्श्य—'ईदृशैश्चरितै राजन्! सत्यं दोषाकरो भवान्' इत्युदाहरणं कस्य लक्षणस्येति लिखत।

उत्तरम्—'शोभा ख्यातोऽपि यद्दोषो गुणकीर्त्या निषिध्यते' इति तल्लक्षणम्। ख्यातोऽपि प्रसिद्धोऽपि यस्य दोषः गुणकीर्तिप्रतिपादनेन निषिध्यते निवार्यते सा शोभा इति कारिकार्थः। गुणकथनेन प्रसिद्धदोषतिरस्कारत्वं शोभात्वमित्यर्थः। उदाहरणं यथा—'मुधा निन्दति संसारं कंसारिर्यत्र पूज्यते' इति। अत्र भगवत्पूजा-गुणकथनेन संसारदोषापाकरणात् शोभालक्षणम्। 'ईदृशैश्चरितै राजन् सत्यं दोषाकरो भवान्' इत्यत्र निरुक्ताख्यं लक्षणम्। तल्लक्षणं यथा—'निरुक्तं स्यान्नि-र्वचनं नाम्नः सत्यं तथाऽनृतम्' इति। नाम्नः सत्यं तथाऽनृतं यत्र निर्वचनं= व्युत्पत्तिदर्शनं स्यात्तदा निरुक्ताख्यं लक्षणं भवति। अयं भावः—सत्यासत्यतया नाम्नो निर्वचनं निरुक्तत्वम्। तत्र व्याकरणसाध्यं सत्यम्, तदसाध्यं मिथ्या।

'ईदृशै'रित्युदाहरणमुभयोरस्ति। अस्यार्थः—हे राजन्! भवान् ईदृशैः निर्मलैरनुचितैर्वा चरितैराचरणैः सत्यं दोषाकरः=चन्द्रः दोषास्पदम् इति वा। अत्र चन्द्रपक्षे दोषाकरो रात्रिकर इति, राजपक्षे दोषाणामाकर इति च व्याकरण-

साध्यत्वात्सत्यं निरुक्तम् । 'प्रकृतिरञ्जनाद्राजे'ति तु व्याकरणासाध्यत्वान्मि[illegible] निरुक्तम् । यतः वर्णितो राजा दोषास्पदम् एव न तु प्रकृतिरञ्जकः । ([illegible] दीप्तौ इत्यस्य हि राजन्निति रूपम्) तथा च–यत्रान्वर्थंन्नामनिर्वचनं तत्र सत्[illegible] निरर्थकन्नामनिर्वचनञ्च मिथ्येति फलितम् ।

(एतत् सदृशा अपि प्रश्नाः सम्भवन्ति । यथा—प्रतिषेधलक्षणम् उदाहर[illegible] संगमनपूर्वकं निरूप्य—'चन्द्रांशुसूत्रग्रथितां नभःपुष्पस्रजं वह' इत्युदाह[illegible] कस्येति निरूपयत । तेषामुत्तराणि परिशिष्टदर्शितविषयानुक्रमणिकासाहा[illegible] अनयैव रीत्या देयानि) ।

—:०:—

चतुर्थो मयूखः

१ प्रश्नः—गुणसामान्यलक्षणं प्रदर्श्य गुणैः रसानां सम्बन्धोऽस्ति न [illegible] अस्ति चेत् कीदृशः ? इति विस्पष्टीक्रियताम् ।

उत्तरम्—गुण्यन्ते इति गुणाः । रसवृत्तित्वे सति शब्दार्थद्वारेण तदुपकार[illegible] गुणत्वम् । यथा लोके शरीरद्वारेण शौर्यादयो धर्मा आत्मानमुपकुर्वन्ति, तथैव [illegible] शब्दार्थद्वारेण श्लेषादयो धर्माः कदाचित् न तु सर्वदा सम्भाविनं रसमुपकुर्वन्[illegible] यथा शौर्यादयः आत्मन एव धर्मा न तु शरीरस्य, तथैव श्लेषादयो रसस्यैव [illegible] न तु वर्णानाम्, एवञ्च—गुणरसयोर्धर्मधर्मिणोः समवायः सम्बन्ध इति सिद्ध[illegible]

२ प्रश्नः—प्रसादलक्षणं सोदाहरणं प्रदर्श्य–'वयस्य ! पश्य पश्यास्याश्च[illegible] लोचनाञ्चल'मित्यत्र स्थितं गुणलक्षणसंगमनपूर्वकं प्रकटयत ।

उत्तरम्—कवेरभिमतार्थस्य स्वयमेव प्रकाशनं प्रसादो गुणः । अत्राह [illegible] देवः—'यस्मादन्तः स्थितः सर्वः स्वयमर्थोऽवभासते । सलिलस्येव सूक्तस्य गो[illegible] भवति, तथैव पद्ये स्थितः कवेरभिमतो योऽर्थः स्वयमेव प्रकाशते सः प्रसाद' [illegible] तदर्थः ।

काव्यप्रकाशे प्रसादलक्षणं त्वेतत्—

'शुष्केन्धनाग्निवत्स्वच्छजलवत्सहसैव यः ।
व्याप्नोत्यन्यत्प्रसादोऽसौ सर्वत्र विहितस्थितिः' । इति ।

उदाहरणमपि एतत्पद्यमेव । पद्यप्रतिपाद्यार्थस्य स्पष्टतया स्वयमेव प्रका[illegible] मानत्वात् ।

'वयस्य ! पश्य पश्यास्यास्याश्चञ्चलं लोचनाञ्चलम् ।' एतदुदाहरणं माधुर्यगुणस्यास्ति । रमणीयतामिश्रितविचित्रतोत्पादकपुनरुक्तपदत्वं माधुर्यगुणस्य स्वरूपम् । तल्लक्षणं यथा—'माधुर्यं पुनरुक्तस्य वैचित्र्यं चारुतावहम्' । इति । तथा चात्र 'पश्य पश्ये'ति पुनरुक्तपदस्य वैचित्र्यजनितसौन्दर्यप्रतीतिः सञ्जायते ।

३ प्रश्नः—वामनोक्तकान्त्यर्थव्यक्तिगुणयोरन्तर्भावः कुत्र ? कथञ्च स इति प्रतिपादयत ।

उत्तरम्—'दीप्तरसत्वं कान्तिः अभिधेयार्थस्पष्टत्वमर्थव्यक्ति'रिति वामनोक्तकान्त्यर्थव्यक्तिगुणयोर्लक्षणे वर्तेते । ग्रन्थकारेण तु कान्तिगुणस्यान्तर्भावः शृङ्गारादिरसेषु, अर्थव्यक्तेश्च प्रसादगुणे प्रकाशितः । यतः—कान्तेर्दीप्तरसत्वात् शृङ्गारादिरसानाञ्च तथात्वात् उक्तरसेष्वेव कान्तेरन्तर्भावो युक्तः । तथैवार्थव्यक्तेः प्रसादस्य च कविप्रदर्शिताभिधेयार्थस्फुटत्वहेतुभूतत्वात् प्रसाद एवार्थव्यक्तेरन्तर्भावो युज्यते । अत एव ग्रन्थकारेणाधोलिखितः कारिकार्थो निर्मितः । 'शृङ्गारे च प्रसादे च कान्त्यर्थव्यक्तिसङ्ग्रहः' । अस्यार्थः—कान्तिश्चार्थव्यक्तिश्चेति कान्त्यर्थव्यक्ती तयोः सङ्ग्रहः क्रमशः शृङ्गाररसे प्रसादगुणे च भवति । शृङ्गारे चेत्युपलक्षणम् । तेन शृङ्गारे कान्तेरन्तर्भावो अग्राह्योऽयमंशः ।

४ प्रश्नः—गुणालङ्कारयोर्मिथो भेदं प्रदर्शयत ।

उत्तरम्—रसवृत्तित्वे सति शब्दार्थद्वारेण कदाचित् न तु सर्वदा तदुपकारकत्वं गुणत्वम् । शब्दार्थवृत्तित्वे सति रसोपकारकत्वं वाच्यवाचकोपकारकत्व वाऽलङ्कारत्वम् । अत एव समवायसम्बन्धेन काव्यशोभोत्कर्षहेतुका गुणाः । संयोगसम्बन्धेन काव्यात्मनः काव्यशरीरस्य वोत्कर्षका अलङ्काराः इति भेदः । यथा शौर्यादयो गुणाः आत्मानमेवोपकुर्वन्ति न तु शरीरम् । अथ च यथा तिलकादयोऽलङ्काराः भालप्रभृत्यवयवसंयोगद्वारेण शरीरशोभां वर्धयन्ति तद्वत् काव्यसम्बन्धिगुणालङ्काराणां स्थितिः । निष्कर्षश्चायम्—गुणाः काव्यधर्माः अलङ्काराः काव्यशोभाधायका एव केवलं न तु तदीयधर्माः इति भेदः ।

परिकरश्लोकश्चात्र—

'···गुणाः काव्ये पुंसि शौर्यादयो यथा ।
तिलकाद्यमिव स्त्रीणां विदग्धहृदयङ्गमम् ।
व्यतिरिक्तमलङ्कारं प्रकृतेर्भूषणं गिराम् ॥

५ प्रश्नः—'व्यासनिर्वाहादि'सप्तगुणानां लक्ष्यसंगमनपूर्वकं लक्षणानि प्रतिपाद्य तेषामस्तित्वं ग्रन्थकृन्मतेन वर्तते न वेति सोपपत्तिकं साधयत ।

उत्तरम्—व्यासनिर्वाहादिसप्तगुणानामस्तित्वं ग्रन्थकृन्मतेन नैव वर्तते । कथमिति चेत् ? अग्रे वक्ष्यामः । प्रथमं तावत् एतेषां लक्षणानि लक्ष्यसंगमनपूर्वकं प्रदर्श्यन्ते—तत्र पदार्थस्य वाक्यार्थेनाभिधानं 'व्यासः' । यथा—'चन्द्र' इत्येकस्मिन् पदार्थे वक्तव्ये 'अत्रेर्नयनसमुत्थं ज्योतिः' इति वाक्यार्थाभिधानम् । 'निर्वाहो' वर्णसादृश्यम् । यथा—'सोऽहमाजन्मशुद्धाना'मिति । 'प्रौढि'र्नाम अन्यार्थकशब्देन लक्ष्यनिर्देशः । यथा—'मन्दाक्रान्ता विसृजति रसं नेक्षुयष्टिः समग्रम्' इति । अत्र 'इक्षुयष्टि'विशेषणभूतं 'मन्दाक्रान्ता'पदं तन्नामकवृत्तमत्रेति सूचयति । कविसङ्केतप्रसिद्धया वर्णनं 'मौचिती' । यथा—समुद्रादिजलाधारेष्वपि कमलवर्णनमुचितमेव कविसङ्केतविषयत्वात्तस्य । 'शास्त्रान्तररहस्योक्ति'र्नाम काव्ये तदतिरिक्तज्योतिषादिशास्त्रान्तर्गतरहस्यप्रकटनम् । 'संग्रहः' समासः । स च वाक्यार्थे वक्तव्ये पदार्थाभिधानस्वरूपः । यथा—'निदाघशीतलहिमकालोष्णसुकुमारशरीरावयवा योषिदि'ति वाक्यार्थे वक्तव्ये 'वरवर्णिनी'ति पदार्थाभिधानम् । 'दिक् प्रदर्शिता' नाम दिक्प्रदर्शनम् । साभिप्रायोक्तिविन्यास इत्यर्थः ।

एते अन्याचार्योक्तसप्तगुणाः ग्रन्थकृन्मतेन वैचित्र्यज्ञापका एव न तु गुणाः । अत एवोक्तं तेन—

'वैचित्र्यलक्षणं व्यासो निर्वाहः प्रौढिरौचिती ।
शास्त्रान्तररहस्योक्तिः संग्रहो दिक् प्रदर्शिता ॥' इति ।

—: ० :—

पञ्चमो मयूखः

१ प्रश्नः—अलङ्कारसामान्यलक्षणं प्रतिपाद्य शब्दार्थोभयालङ्काराणां भेदे किं बीजमित्युल्लेखनीयम् ।

उत्तरम्—अलङ्क्रियतेऽनेनेति अलङ्कारः, अलङ्कृतिर्वाऽलङ्कारः इत्यलङ्कारसामान्यव्युत्पत्तिरियम् । अथालङ्कारसामान्यलक्षणं कथ्यते—

'शब्दार्थयोः प्रसिद्धया वा कवेः प्रौढिवशेन वा ।
हारादिवदलङ्कारः सन्निवेशो मनोहरः ॥'

अस्यार्थः—कवेः प्रसिद्धया प्रसिद्धतया वा प्रौढिवशेन प्रौढिकल्पनया वा शब्दार्थयोः वाच्यवाचकयोः मनोहरः चमत्कृतिजनकः सन्निवेशः समभिव्याहारः हारादिवत् पुरुषस्याभूषणादिवदलङ्कारो भवतीति शेषः । अयं भावः—यथा शरीरे कटककुण्डलादयः संयोगसम्बन्धेन वर्तन्ते, तथैव काव्ये शब्दार्थशरीरेऽनुप्रासोप-

मादयोऽलङ्काराः संयोगवृत्त्या वर्तन्ते। सः क्रमशः शब्दतोऽलङ्कारः (अनुप्रासादिः) अर्थगत(उपमादि)श्चोच्यते। तथा च—अलङ्काराणां शब्दार्थगतत्वनिश्चयस्तु अन्वयव्यतिरेकानुविधायित्वेन वोध्यः। स च समानार्थकशब्दपरिवर्तनेऽपि योऽलङ्कारो वर्तते सोऽर्थगतः, शब्दपरिवर्तनासहिष्णुः इति शब्दार्थालङ्काराणां भेदे हेतुः। तथा चायं निष्कर्षः—शब्दपरिवृत्त्यसहत्वे शब्दालङ्कारः, शब्दपरिवृत्तिसहत्वे अर्थालङ्कारः, शब्दपरिवृत्तिसहत्वासहत्वे उभयालङ्कारः।

२. प्रश्नः—'परिणाम'लक्षणं लक्ष्यसंगमनपूर्वकं प्रकाश्य—'सिक्तं स्फटिककुम्भान्तःस्थितिश्वेतीकृतैर्जलैः। मौक्तिकं चेल्लतां सूते तत्पुष्पैस्ते समं यशः' इत्यत्र कोऽलङ्कार इति सोपपत्तिकं विवृणुत।

उत्तरम्—परिणामलक्षणं तावदित्थमस्ति, 'परिणामोऽनयोर्यस्मिन्नभेदः पर्यवस्यति'। अस्यार्थः—यस्मिन् काव्ये अनयोरारोप्यमाणारोप्यविषययोः उपमानोपमेययोरित्यर्थः, अभेद ऐक्यम् पर्यवस्यति क्रियान्वयेन भवति तत्र परिणामलङ्कारः। उदाहरणं यथा—'कान्तेन पृष्टा रहसि मौनमेवोत्तरं ददौ' रहसि विजने कान्तेन प्रियेण पृष्टा काचिन्नायिकोत्तरं प्रत्युत्तरं मौनमेव वाग्राहित्यमेव ददौ। अत्र उत्तरे मौनत्वारोपः मौनस्योत्तरपदाभिन्नतयैव दानक्रियायामन्वयात्परिणामालङ्कारः।

'सिक्तं स्फटिककुम्भान्तः स्थितिश्वेतीकृतैर्जलैः।
मौक्तिकं चेल्लतां सूते तत्पुष्पैस्ते समं यशः'॥

इत्यत्र सम्भावनालङ्कारः। तल्लक्षणं यथा—

'संभावनं यदीत्थं स्यादित्यूहोऽन्यप्रसिद्धये'।

अन्यस्य अपरस्य प्रसिद्धये सिद्ध्यर्थं 'यदीत्थमेवं स्यात् तदाऽन्यत्कार्यं स्यात्' इति यत्रोहस्तर्कः तत्र संभावना। अयं भावः—यदीत्थं स्यात्तदाऽन्यत्कार्यं स्यादिति तर्कः विषयार्थबोधकपदसमभिव्याहारः सम्भावना। अस्योदाहरणस्यार्थः—स्फटिककलशान्तस्थित्या श्वेतीकृतैर्जलैः सिक्तं मौक्तिकं लतां जनयति तदा ते यशः तत्पुष्पैः सदृशमिति सामान्योऽर्थः।

कविसम्प्रदाये यशोवर्णः सितो भवति। तेन श्वैत्यातिशयप्रतिपादनायोक्तम्-'यदि स्फटिककुम्भान्तश्वेतजलैर्मौक्तिकलतापुष्पाणि भवेयुः, तदा तैः सितपुष्पैः समं ते यशः स्यात्' इति। अतोऽत्र संभावनालङ्कारः।

(एतत् सदृशा अपि प्रश्नाः सम्भवन्ति। यथा—दीपकालङ्कारं सोदाहरणं प्रतिपाद्य—'नायं सुधांशुः किं तर्हि सुधांशुः प्रेयसीमुखम्' इत्यत्र कोऽलंकारः इति

लक्ष्यसंगमनपूर्वकं प्रदर्शयत । एतेषामुत्तराणि परिशिष्टदर्शितविषयानुक्रमणिका साहाय्येन अनयैव रीत्या देयानि ।)

३. प्रश्नः—'अलंकारानिमान् सप्त केचिदाहुर्मनीषिणः' इत्यत्र स्थितेन 'सप्त' पदेन केऽलङ्कारा अभिमताः ? तेषां लक्षणानि च कानि ? इति समुत्तरणीयम्

उत्तरम्—सप्तपदेनात्र रसवत्, प्रेयः, ऊर्जस्वि, समाहितम्, भावोदयः, भावसन्धिः, भावशवलता इत्थमेते सप्तालङ्कारा ग्रन्थकर्त्रा प्रतिपादिताः । तदुक्तम्—

'रसभावतदाभासभावशान्तिनिबन्धनाः ।
रसवत्प्रेयऊर्जस्विसमाहितमयाभिधाः ॥
भावानामुदयः सन्धिः शवलत्वमिति त्रयः ।
अलंकारानिमान्सप्त केचिदाहुर्मनीषिणः' ॥

रसवदादयश्चत्वारोऽलङ्काराः भावोदयादयः त्रयश्च मिथो मिलित्वा सप्तालङ्कारान् केचिन्मनीषिणः आहुः कथयन्ति । अत्र केचिदाहुरिति कथनेन ग्रन्थकर्तुरभिमता नैते इति भावः । रसादेरलङ्कारत्वात् । अथ एतेषां स्वरूपाणि कथ्यन्ते । तथा च—रसोऽस्तीति 'रसवत्', यत्र रसः रसान्तरस्य भावस्य वाऽङ्गत्वेन कथ्यते, तत्र 'रसवद'लङ्कारः । प्रकृष्टप्रियत्वात् 'प्रेयः' । यत्र निर्वेदादित्रयस्त्रिंशद्भेदो भावः, पूज्यविषयकरतिरूपो भावश्च पराङ्गत्वेन कथ्यते तत्र 'प्रेयोऽ'लङ्कारः । ऊर्जो वलं तदत्रास्ती 'त्यूर्जस्वि' । अनौचित्येन प्रवृत्तौ रसाभासभावाभासौ यत्र पराङ्गत्वेन कथ्येते तत्र 'ऊर्जस्व्य'लङ्कारः । भावस्य प्रशाम्यदवस्था 'भावशान्तिः' । भावशान्तेः पराङ्गत्वकथने 'समाहित'मलङ्कारः । भावानामुदयः आधिक्यं 'भावोदयः' । भावानामाधिक्यं यत्र पराङ्गत्वेन कथ्यते तत्र 'भावोदया'ऽलङ्कारः । भावयोः सन्धिः 'भावसन्धिः' । भावद्वयं यत्र पराङ्गत्वेन कथ्यते तत्र 'भावसन्धि'रलङ्कारः । बहूनां भावानां शवलत्वं मिश्रत्वं (पूर्वपूर्वोपमर्देनोत्पत्तिः) 'भावशवलता' । बहवो भावा यत्र पराङ्गत्वेन कथ्यन्ते तत्र 'भावशवलता'लङ्कारः । एते सप्त रसादीनामलङ्कार्यत्वात् (प्राधान्यात्) अलङ्कारस्य च अलङ्कार्यत्वासम्भवात् नालङ्कारान्तराणि ।

४. प्रश्नः—'शुद्धिरेकप्रधानत्वं तथा संसृष्टिसङ्करौ'—चतुर्णामेतेषां लक्षणप्रदर्शनपुरस्सरमलङ्कारान्तरत्वमस्ति न वेति प्रतिपादयत ।

उत्तरम्—शुद्धिः, एकप्रधानत्वं, संसृष्टिः, सङ्करश्चेत्यमी चत्वारोऽलङ्काराः अलङ्कारान्तराणि न सम्भवन्ति । कथमिति चेत् ? अग्रे वक्ष्यामः । प्रथमं तावत् तल्लक्षणानां निरूपणमावश्यकम् । तत्र 'शुद्धि'र्नाम अलङ्कारान्तरायोगे सति

एकालङ्कारसत्ता। 'एकप्रधानत्वं' नाम अलङ्कारद्वयसत्त्वे सति एकस्योपकार्यतया प्राधान्यमपरस्य चोपकारकत्वेनाङ्गत्वम्। 'संसृष्टि'र्नाम तिलतण्डुलन्यायेन परस्परापेक्षाविरहेण शब्दार्थोभयालङ्काराणां सत्ता। सा च अलङ्कारस्य त्रिविधत्वात्मकत्वेन त्रिरूपा। 'सङ्करो' नाम नीरक्षीरन्यायेन परस्परसापेक्षतया शब्दार्थोभयालङ्काराणां स्थितिः। स च अलङ्कराणां गुणप्रधानभावेऽङ्गाङ्गिभावसङ्करः, एकपदाश्रयस्थितौ एकवाचकानुप्रवेशसङ्करः, सन्दिग्धत्वे सन्देहसङ्करः। द्वयोस्तदधिकानां वा प्रधानभावे समप्राधान्यसङ्करः। सङ्कराणां साङ्कर्ये च सङ्करसङ्करः इति 'कुवलयानन्द' दिशा पञ्चप्रकारकः। एवं लक्षणविचारः कृत एतेषामस्माभिः।

अथ एतेषामलङ्कारान्तरत्वमस्ति न वेति विचारणीयम्। एते हि चत्वारः पूर्वोक्ताऽलङ्कारेष्वेवान्तर्भूताः, न तु तेभ्यः पृथग्भूताः तथाहि-विन्यासविशेषात्मका एवैतेऽलङ्काराः न त्वेषां स्वरूपविशेषाः प्रकाशिता आचार्यैः। विन्यासभेदे सत्यपि हि स्वरूपभेदानुदय एव। विन्यासविशेषा एवैतेषां लक्षणानि इत्याग्रहे सति रसानामपि विन्यासभेदे रसान्तरत्वापत्तिः अत एते अलङ्कारान्तराणि नैवेति सिद्धम्।

पीयूषवर्षोऽप्याह—

'शुद्धिरेकप्रधानत्वं तथा संसृष्टिसङ्करौ।
एतेषामेव विन्यासान्नालङ्कारान्तराण्यमी'॥

दूषणान्तरमप्यत्र। सर्वेषामलङ्काराणां न्यूनाधिकरूपतया विसदृशरूपाणि भवन्ति। शुद्धयादीनामलङ्कारत्वस्वीकारे तान्यपि अलङ्कारान्तराणि स्युः। यथा रूपकोपमादितोऽभेदात् सादृश्यरूपकादयोऽलङ्कारा रूपकोपमादितो न भिन्नास्तथैव शुद्धयादयोऽपि नालङ्कारान्तराणि।

तदेवाह ग्रन्थप्रणेता—

'सर्वेषां च प्रतिद्वन्द्वप्रतिछन्दभिदाभृताम्।
उपाधिः क्वचिदुद्भिन्नः स्यादन्यत्रापि सम्भवात्'॥

व्याख्या चास्य—चेति किञ्चेत्यर्थे। प्रतिद्वन्द्वो विरोधितया न्यूनता, अथवा प्रतिद्वन्द्वं विसदृशः प्रतिच्छन्दः विरोधितया आधिक्यं वा, ताभ्यां भिदां भेदं बिभ्रतीति तेषां न्यूनाधिक्यभेदवताम्, अथवा विसदृशं—सदृशाभ्यां भिन्नानां सर्वेषामलङ्काराणामुद्भिन्नः कथितः उपाधिः प्रकारः क्वचिदन्यत्रापि शुद्धयादिस्थलेपि सम्भवात् स्यात् भवेत्।

५ प्रश्नः—'मालोपमा-रशनोपमा'दीनामपि नालङ्कारान्तरत्वम्'—मतमेतत् समर्थयत।

उत्तरम्—'मालोपमा'-'रशनोपमा'दयोऽपि अलङ्कारान्तराणि नैव सम्भवन्ति, तेऽपि उपमादिष्वलङ्कारेषु अन्तर्भवन्ति। तथाहि—उपमानां बह्वीनां मालाकारेण विन्यासे सति 'मालोपमा'। तथैव बह्वीनामुपमानां रशनाकारेण विन्यासे 'रशनोपमा'। एवं रूपकादीनामपि मालाकारेण रशनाकारेण च विन्यासे 'मालारूपक''रशनारूपका'दयः।

तथा च यथा लौकिका हारादयोऽलङ्काराः मानवशरीरे मालारशनादिरूपेण विन्यस्ताः शोभामुत्पादयन्ति, तथैव उपमादयोऽपि वाच्यालङ्काराः मालारशनाद्याकारेण काव्ये विन्यस्ताः सन्त विच्छित्तिविशेषमुत्पादयन्ति।

निष्कर्षश्चायम्—मालोपमारशनोपमादिषु चमत्कारप्रतीतिः विन्यासविशेषैरेव न तु तेषां स्वरूपविशेषाः निरूपिताः काव्यतत्त्ववेत्तृभिः। अतस्ते पूर्वोक्तोपमादिष्वलङ्कारेष्वेवान्तर्भवन्ति, न तु तेषामलङ्कारत्वम्।

पीयूषवर्षोऽप्याह—

'माला परम्परा चैषां भूयसामनुकूलके।
मनुष्ये भवतः क्वापि ह्यलङ्काराङ्गतां गते॥'

व्याख्येयमस्याः—'भूयसां=बहूनाम्' 'एषाम्'=उपमादीनां वाच्यालङ्काराणां, 'माला'=मालाकारेण विन्यासः, 'परम्परा च'=रशनाद्याकारेण च विन्यासः 'अलङ्काराङ्गताम्'=अलङ्कारोपकारकतां, 'गते'=प्राप्ते (सति), 'मनुष्ये'=जने (इव), 'क्वापि हि'=काव्ये, 'अनुकूलके'=चमत्कारजनके, 'भवतः'=स्तः।

६ प्रश्नः—'सर्वेऽलङ्कारा अतिशयोक्तिरूपा एव'—मन्तव्यमिदं खण्डयत।

उत्तरम्—केचन आचार्याः 'शब्दे अनुप्रासयमकादयः शब्दालङ्काराः, शब्दार्थे उपमारूपकादयो वाच्यालङ्काराः, शब्दार्थयोः पुनरुक्तप्रतीकाशादय उभयालङ्काराः, वाक्यार्थे दृष्टान्तादयः, वाक्यार्थसमूहे च निदर्शनादयः सर्वेऽप्यमी अलङ्काराः अतिशयोक्तितो न भिन्नाः' इति मन्यन्ते। ते एवं समर्थयन्ति—'सर्वेष्वप्यलङ्कारेषु अतिशय(वक्रत्व)कथनद्वारेणैव विच्छित्तिविशेष उद्भवति। किञ्च—तेषां नामान्यपि अतिशयकथनरूपयौगिकार्थप्रतिपादकानि। अतः सर्वेष्वप्यलङ्कारेषु अतिशयोक्तेः वक्रोक्तेर्वा सद्भावात् न तेऽतिशयोक्तितो भिन्नाः' इति।

तेषां कथनमसङ्गतमेव। तथाहि—यद्यपि ते अतिशयोक्तेः सादृश्यं धारयन्ति। तथापि यथा प्रत्येकेषु मनुष्येषु समानतां दधन्त्यपि मुखानि भिन्नस्वरूपाणि लक्ष्यन्ते, तथैव अनुप्रासोपमादयः अतिशयोक्तितः भिन्नस्वरूपा दृश्यन्ते। अतः अनुप्रासोपमादयः अतिशयोक्तितो भिन्ना एव।

अस्यैवाशयस्य कारिकाः जयदेवेनेत्थं समुद्भाविताः—

'शब्दे पदार्थे वाक्यार्थे वाक्यार्थस्तवके तथा ।
एते भवन्ति विन्यासाः स्वभावातिशयात्मकाः ।। १ ।।
कस्याप्यतिशयस्योक्तेरित्यन्वर्थविचारणात् ।
प्रायेणामी ह्यलङ्कारा भिन्ना नातिशयोक्तितः ।। २ ।। (पूर्वपक्षः)
अलङ्कारप्रधानेषु दधानेष्वपि साम्यताम् ।
वैलक्षण्यं प्रतिव्यक्ति प्रतिभाति मुखेष्विव ।। ३ ।। (सिद्धान्तपक्षः)

अलङ्काराणां मिथः पार्थक्यम्—

(१) 'लाटानुप्रास'-'पुनरुक्तप्रतीकाशयोः'—

'अनु'=अनुगतः, 'प्र'=प्रकर्षेण, (वर्णानां शब्दानां वा) 'आसः'=स्थितिः यत्र स 'अनुप्रासः' । 'लाटानुप्रासो' नाम अभिप्रायभेदमात्रेण शब्दार्थयोः पौनरुक्त्यम् । स च शब्दगत एव । एषश्च लाटदेशीयजनप्रियत्वात् 'लाटानुप्रासः' । शब्दालङ्कार एषः, शब्दपरिवृत्त्यसहत्वात् ।

पीयूषवर्षेणाप्युक्तम्—

'लाटानुप्रास' भूर्भिन्नाभिप्राया पुनरुक्तता ।' इति ।

यथा—

'यत्र स्यान्न पुनः शत्रोर्गर्जितं तज्जितं जितम्' ।।

अत्र 'जितं जितम्' इति पुनरुक्तयोः पदयोः द्वितीयस्मिन् 'जित'मिति पदे साफल्यरूपाभिप्रायसत्त्वात् 'लाटानुप्रासः' ।

'पुनरुक्तवत्'=द्विवारकथनमिव, 'प्रतीकाशः'=आभासः, यस्मिन् तत्'पुनरुक्तप्रतीकाशम् ।' आपाततोऽर्थस्य पौनरुक्त्येनाऽऽभासे 'पुनरुक्तप्रतीकाश'मलङ्कारः ।

उक्तं हि ग्रन्थकृता—

'पुनरुक्तप्रतीकाशं पुनरुक्तार्थसन्निभम् ।'

उभयालङ्कार एषः । शब्दपरिवृत्तिसहत्वासहत्वाभ्याम् । यथा—

'अंशुकान्तम्' 'अम्बरान्तम्' इति शब्दयोः 'किरणसुन्दर'-'गगनमध्य'-रूपवाच्यार्थभेदेऽपि 'गगनमध्य' रूपस्यैकस्यैवार्थस्य पौनरुक्त्येन प्रतीतेः पुनरुक्तप्रतीकाशम्' एषः 'पुनरुक्तवदाभास' संज्ञकोऽपि ।

एतयोः द्वयोरपि अलङ्कारयोश्चमत्कारजनकत्वं यद्यपि पौनरुक्त्ये एव तथापि 'लाटानुप्रासे' अभिप्रायभेदेन शब्दयोः पौनरुक्त्यम्, पुनरुक्तप्रतीकाशे अर्थयोः पौनरुक्त्येन प्रतीतिरेव, न तु पौनरुक्त्यमिति भेदः ।

(२) 'लाटानुप्रास'-'यमकयोः'—

लाटानुप्रासस्य लक्षणलक्ष्ये पूर्वमेव प्रदर्शिते । यमकं निरूप्यतेऽधुना । यम्यं इति 'यमकम्' । यद्वा—यमौ=द्वौ समजातौ तत्प्रकृति 'यमकम्' । भिन्नार्थकवर्ण समूहावृत्ति'र्यमकम्' ।

तदुक्तम्—

'आवृत्तवर्णस्तवकं स्तवकन्दाङ्कुरं कवेः ।
यमकं प्रथमा धुर्यं माधुर्यवचसो विदुः' ।।

उदाहरणमपीदमेव, तथाहि—अत्र बवयोरैक्यात् 'स्तवकं स्तवक'मित्यत्र 'माधुर्यं माधुर्ये'त्यत्र च वर्णसमूहावृत्तिर्वर्तते ।

क्वचित् वर्णभेदेऽपि श्रुतिसाम्येन यमकस्य सत्ता । श्रुतिसाम्यजनकाः वर्णास्तु निम्नलिखिताः सन्ति ।

'यमकादौ भवेदैक्यं डलयो रलयोर्बवोः ।
शषयोर्नणयोश्चान्ते सविसर्गाविसर्गयोः ।।
सबिन्दुकाऽबिन्दुकयोः स्यादभेदप्रकल्पनम्' ।। १ ।।

द्वयोरप्यलङ्कारयोर्वैचित्र्ये यद्यपि पौनरुक्त्यमेव निमित्तम्, तथापि लाटानुप्रासे शब्दयोस्तात्पर्येण पौनरुक्त्यं, यमके तु वर्णसमूहयोः पौनरुक्त्यमिति पार्थक्यम् ।

(३) पुनरुक्तप्रतीकाश-यमकयोः—

द्वयोरपि निरूपणं लक्ष्यलक्षणनिर्देशपुरस्सरं पूर्वमेव कृतम् । द्वयोरन्तरं सम्प्रति प्रदर्श्यते द्वयोरप्यलङ्कारयोश्चमत्कृतिर्यद्यपि पौनरुक्त्ये एव, तथापि पुनरुक्तप्रतीकाशे उभयोः पौनरुक्त्येनावभासनम्, यमके तु शब्दयोरित्यन्तरम् ।

(४) लाटानुप्रासाऽनन्वययोः

लाटानुप्रासो वर्णित एव । अनन्वयविवरणं दीयतेऽधुना । न विद्यते अन्वयः= उपमानान्तरेण सम्बन्धो, यत्र सोऽनन्वयः' । यत्र एकस्यैवोपमानत्वमुपमेयत्वञ्च तत्र 'अनन्वयः' ।

'उपमानोपमेयत्वे यत्रैकस्यैव जाग्रतः ।
इन्दुरिन्दुरिवेत्यादौ भवेदेवमनन्वयः' ।।

इति चन्द्रालोकेऽपि । 'इन्दुरिन्दुरिवे'ति लक्ष्ये एकस्यैवेन्दोरुपमानोपमेयत्वे वर्तते । लाटानुप्रासे शब्दपरिवृत्त्यसम्भवः । यथा 'जितं जित'मित्यादौ । अनन्वये तु 'इन्दुश्चन्द्र इवे'ति शब्दपरिवर्तनेऽपि नालङ्कारस्वक्षतिः ।

परन्तु 'भग्नप्रक्रम'दोषनिवारणाय अनन्वयेऽपि शब्दैक्यमावश्यकम् ।

(५) उपमाऽनन्वययोः—

उपमीयते इति 'उपमा' । उपमानोपमेययोः सादृश्ये वर्तमाने'उपमा'लङ्कारः । जयदेवोक्तिरप्यत्र—

> 'उपमा यत्र सादृश्यलक्ष्मीरुल्लसति द्वयोः ।
> हृदये खेलतोरुच्चैस्तन्वङ्गीस्तनयोरिव ॥

उपमीयतेऽनेने'त्युपमानम्' । उपमातुं योग्य'मुपमेयम्' । द्वयोरनुगतो धर्मः साधारणो धर्मः । 'इवा'दिपदमुपमावाचकम् । एषां चतुर्णां सद्भावे 'पूर्णोपमा' । उक्तेषु चतुर्षु मध्ये एकस्यापि लोपे 'लुप्तोपमा' । उदाहरणमपीदमेव पद्यम् । अत्र 'पूर्णोपमा' वर्तते । तथाहि–द्वयोरिति पद'मुपमेयम्' । 'तन्वङ्गीस्तनयो'रित्युपमानम् । सादृश्यलक्ष्मीरि'ति साधारणो धर्मः । 'इवे'त्युपमावाचकपदम् । तेनात्र 'उपमानोपमेययोः' इत्युमेयस्य 'स्तनयो'रित्युपमानेन सह सादृश्यप्रतीतेः 'पूर्णोपमा' ।

यद्यपि द्वयोरपि विच्छित्तिबीजं साधर्म्यमेव, तथापि उपमायामुपमानोपमेये पृथक् वर्तेते, अनन्वये तु उपमानतामधितिष्ठति इति वैधर्म्यम् ।

(६) उपमोपमेयोपमयोः—

उपमानिरूपणं पूर्वमेव कृतम् । उपमेयेन उपमीयते 'इत्युपमेयोपमा' । प्रथमवाक्ये यदुपमेयं वर्तते, तदेव द्वितीयवाक्ये यत्र उपमानं स्यात् तत्र 'उपमेयोपमा' ।

> 'पर्यायेण द्वयोस्तच्चेदुपमेयोपमा मता' ।

इति ग्रन्थकारोऽपि । यथा—

> 'धर्मोऽर्थ इव पूर्णश्रीरर्थो धर्म इव त्वयि ॥'

अत्र प्रथमवाक्ये 'धर्म' पदमुपमेयम् । 'अर्थ' पदञ्च उपमानम् । द्वितीयवाक्ये तमेव पूर्ववाक्यस्थं 'पूर्णश्री'रूपं साधारणं धर्ममादाय 'धर्म' इत्युपमेयपदमुपमानतां लेभे, 'अर्थ' इत्युपमानपदञ्चोपमेयतां लेभे 'इत्युपमेयोपमा' । यद्यपि द्वावप्यलङ्कारौ साधर्म्यमूलकावेव, तथापि 'उपमा' एकवाक्यनिष्ठा, 'उपमेयोपमा' च वाक्यद्वयनिष्ठा इति वैषम्यं तयोः ।

(७) उपमा-रूपकयोः—

उपमा निरूपितैव । रूपयति=उपमानोपमेययोरभेदारोपेणैकतां नयति इति रूपकम् ।

'यत्रोपमानचित्रेण सर्वथाऽप्युपरज्यते ।
उपमेयमयी भित्तिस्तत्र 'रूपक'मिष्यते ॥'

इति पीयूषवर्षः । एवञ्च—उपमेये उपमानारोपे 'रूपकम्' । उदाहरणन्त्विदमेव, उपमानमेव चित्रमिति समासे उपमाने चित्रारोपात्, 'उपमेयमयी भित्ति'रित्यसमासे उपमेये भित्तितादाम्यारोपाच्च । एवञ्चात्र उपमानं चित्राभिन्नं सत् प्रतीयते इति तयोर्भेदेऽपि अभेदारोपात् 'रूपकम्' ।

द्वयोरपि सादृश्यमूलकत्वेऽपि उपमायां भेदाभेदयोः प्राधान्यं, रूपके तु अभेदस्यैव प्राधान्यमिति निष्कर्षः । किञ्च—उपमायां साधर्म्यात् चारुत्वप्रतीतिः रूपके तु अभेदाध्यवसायात् ।

(८) उपमोत्प्रेक्षयोः—

उत्=ऊर्ध्वं गता, प्रेक्षा=बुद्धिः यस्यां सा 'उत्प्रेक्षा' । प्रकृतस्य उत्कटकोटिकज्ञानतादात्म्येन सम्भावन'मुत्प्रेक्षा' ।

'उत्प्रेक्षो'न्नीयते यत्र हेत्वादिर्निह्नुतिं विना'

इति जयदेवोऽपि । सा द्विधा—इवादिकोत्प्रेक्षावाचकपदसत्त्वे 'अगूढा' । तदभावे 'गूढा' इवादिपदानि दण्डिना काव्यादर्शे एवमुक्तानि—

'मन्ये शङ्के ध्रुवं प्रायो नूनमित्येवमादिभिः ।
उत्प्रेक्षा व्यज्यते शब्दैरिवशब्दोऽपि तादृशः ॥

उदाहरणम्—

'त्वन्मुखश्रीकृते नूनं पद्मैर्वैरायते शशी' ॥

अथ चन्द्रपद्मयोः स्वाभाविके वैरे सिद्धे कान्तामुखश्रीलाभस्याऽफलस्यापि फलत्वेन सम्भावनात् 'उत्प्रेक्षा' सा च 'नून'मित्युत्प्रेक्षावाचकपदस्य स्थितित्वात् 'अगूढा' ।

यद्यपि द्वयोरपि बीजं साधर्म्यमेव; तथापि उपमा भेदाभेदप्राया, उत्प्रेक्षा च अभेदप्रधाना । अन्यच्च-उपमायामुपमानोपमेययोस्तुलना क्रियते, उत्प्रेक्षायान्तु प्रकृते (उपमेये) अप्रकृतस्य (उपमानस्य) सम्भावनमिति तत्त्वम् ।

(९) उपमा-दीपकयोः—

प्रस्तुतधर्मप्रसङ्गाद् अप्रस्तुतमपि दीपयति = प्रकाशयत्ति इति 'दीपकम्'। अथवा दीप इव 'दीपकम्'। यथा प्रसादार्थमारोपितो दीपो रथ्यायामप्युपकरोति, तथैव ('दीपके') प्रस्तुतार्थमारोपितो धर्मोऽप्रस्तुतेऽप्युपकरोति। एवञ्च—प्रस्तुतनिष्ठसाधारणधर्मकथनं 'दीपकम्'। तदुक्तम्—

'प्रस्तुताप्रस्तुतानाञ्च तुल्यत्वे 'दीपकं' मतम्'।

उदाह्रियते—

'मेधां बुधः सुधामिन्दुर्बिभर्ति वसुधां भवान्' ॥

अत्र 'बिभर्ती'ति धारणरूपक्रिया प्रस्तुते राजनि अप्रस्तुतयोर्बुधचन्द्रयोश्च सम्बद्धा वर्तते, अतो 'दीपक'मलङ्कारः।

यद्यपि द्वावप्यलङ्कारौ साधर्म्यमूलकौ, तथापि उपमायां सादृश्यबोधकपदस्य इवपदादेः प्रयोगोऽपि, दीपके तु तस्य नियमतोऽप्रयोगः इति परमार्थः।

(१०) उपमा-प्रतीपयोः—

'प्रतीपं' विपरीतम्। उपमेयापेक्षया उपमानस्य हीनत्ववर्णने प्रतीपमलङ्कारः।

'प्रतीप'मुपमानस्य हीनत्वमुपमेयतः'।

इति पुस्तकप्रणेताऽपि। यथा—

'दृष्टं चेद् वदनं तस्याः किं पद्मेन किमिन्दुना' ॥

अत्र 'वदन'रूपोपमेयात् 'पद्मेन्दु'रूपोपमानस्य 'किमि'ति काक्वा कार्याक्षमत्वसूचनेन हीनत्वप्रतीतेः 'प्रदीपा'ख्योऽलङ्कारः।

द्वयोरपि बीजं सादृश्यमूलकमेव, परन्तु उपमायां चमत्कृतिनिमित्तमुपमानोपमेययोः सादृश्यमेव, प्रतीपे, तु उपमानतिरस्कृतत्व एव चमत्कार इति रहस्यम्।

(११) प्रतीपोपमा-प्रतीपयोः

प्रतीपं = विरुद्धम् उपमीयते यस्यां सा 'प्रतीपोपमा'।

तल्लक्षणन्तु—

'विख्यातस्योपमानस्य यत्र स्यादुपमेयता।
'इन्दुर्मुख'मिवेत्यादौ स्यात् 'प्रतीपोपमा' तदा ॥

एवञ्च—प्रसिद्धोपमानस्योपमेयवर्णने 'प्रतीपोपमे'ति फलितम्। (पूर्वलिखितायां कारिकायां 'विख्यातस्ये'ति पदोपादानम्, तेन अप्रसिद्धोपमानस्योमेयतायां नायमलङ्कारः।)

'इन्दुर्मुखमिव' इति लक्ष्यम् । उपमानतया सर्वत्र प्रसिद्ध'मिन्दु'पदमत्रोपमे-त्वेन व्यवह्रियते ।

प्रतीपोपमायान्तु उपमानस्योपमेयत्वकथनं, प्रतीपे तु उपमानस्य तिरस्का-कथनमिति वैभिन्यम् ।

(१२) अनन्वयोपमेयोपमयोः—

द्वावपि पूर्वमेव निरूपितौ । यद्यपि द्वावप्यलङ्कारौ सादृश्यमूलावेव, तथा-अनन्वये द्वितीयसदृशवस्तुव्यवच्छेदः, उपमेयोपमायान्तु तृतीयसदृशवस्तुव्यवच्छेद-

(१३) रूपक-परिणामयोः—

रूपकस्य स्वरूपं सलक्ष्यं प्रागेव निरूपितम् । आरोप्यमाणस्य (उपमानस्य-आरोपविषयात्मतया (उपमेयात्मकत्वेन) परिणमनात् 'परिणामः' । यत्र उपमा-नोपमेययोरैक्यं क्रियया सम्बद्धं तत्र 'परिणामः' ।

तदुक्तम्—

'परिणामो'ऽनयोर्यस्मिन्नभेदः पर्यवस्यति ।

उदाहरति ग्रन्थकारः—

'कान्तेन पृष्टा रहसि मौनमेवोत्तरं ददौ ॥'

अत्र उत्तरे मौनत्वारोपं, मौनञ्च दानक्रियायां नान्वेति इति तस्य 'उत्तर-पदाभिन्नतयैव दानक्रियायामन्वयः ।

उभावप्यलङ्कारौ अभेदाध्यवसायमूलावेव, तथापि रूपके उपमानस्य स्वात्म-नैव प्रकृतकार्योपयोगित्वं, परिणामे तु उपमेयाभिन्नत्वेनैव । (अत एव पूर्वोत्त-पदार्थप्रधानो मयूरव्यंसकसमासो रूपकोपयोगी, उत्तरपदार्थप्रधानो विशेषणसमा-सस्तु परिणामोपयोगी ।) रूपके उपमानोपमेययोरभेद एव तात्पर्यं, परिणामे-उपमानस्य उपमेयाभिन्नत्वेन प्रस्तुतक्रियाभिसम्बन्धे । किञ्च—रूपके उपमानाभे-उपमेयोपयोगाय, परिणामे तु उपमेयाभेदः उपमानोपयोगाय इति तयोर्विरोधः

(१४) रूपकापह्नुत्योः—

अपह्नूयते = गोप्यते इति 'अपह्नुति' । तथ्यधर्मनिषेधपूर्वकोऽतथ्यारोपो-ऽपह्नुतिः । उक्तञ्च—

'अतथ्यमारोपयितुं तथ्यापास्तिरपह्नुतिः' ॥

उदाहरणम्—

'नायं सुधांशुः, किं तर्हि ? व्योमगङ्गासरोरुहम् ॥'

अत्र तथ्यस्य 'सुधांशु'ज्ञानस्य निषेधः, 'व्योमगङ्गासरोरुह' रूपमिथ्याज्ञानस्य चाऽऽरोपः ।

उभयोरपि बीजमभेदारोप एव, परं रूपके निषेधरहिताभेदारोपः अपह्नुतौ तु निषेधपूर्वकोऽभेदारोप इति हैयङ्गवीनम् ।

(१५) रूपकोत्प्रेक्षयोः

द्वावपि प्रागवे निरूपितौ । द्वावपि यद्यप्यारोपमूलकावेव, तथापि रूपके उपमेये उपमानारोपे निश्चयः, उत्प्रेक्षायान्तु तत्र उत्कटकोटिकः संशयः ।

(१६) रूपक-स्मरणयोः—

'सदृशानुभवाद् वस्तुस्मृतिः 'स्मरण'मुच्यते ।

इति 'साहित्यदर्पणे' । (क्वचिदयं वैसादृश्येऽपि ।) यथा—

'पङ्कजं पश्यतः कान्तामुखं मे गाहते मनः ॥'

इति 'चन्द्रालोके' । अत्र कान्तामुखसदृशपङ्कजदर्शनजन्यकान्तामुखस्मृतेः 'स्मरणम्' । उभावपि सादृश्यमूलकौ, किन्तु रूपके अभेदारोपस्य प्राधान्यं, स्मरणे तु सदृशवस्तुदर्शनात् पूर्वानुभूतवस्तुनः प्राधान्यमिति वैसादृश्यं तयोः ।

(१७) रूपक-भ्रान्तिमतोः—

'साम्यादतस्मिंस्तद्बुद्धि'र्भ्रान्तिमान्' प्रतिभोत्थितः ।'

इति दर्पणकारः । यथा—

'अयं प्रमत्तमधुपस्त्वन्मुखं वेत्ति पङ्कजम् ।'

इति आलोककारः । अत्र मुखपङ्कजयोः साम्यात् कान्तामुखे भृङ्गानां (मदपरवशत्वात्) पङ्कजभ्रान्तेः 'भ्रान्तिमान्' ।

उभावपि अभेदप्रधानौ, किन्तु रूपके आहार्यज्ञानाश्रयित्वं, भ्रान्तिमति तु अनाहार्यज्ञानाश्रयित्वम् । अत एव रूपके उभयोरपि ज्ञानं, भ्रान्तिमति तु अप्रस्तुतस्यैव ज्ञानमिति भिन्नता तयोः ।

(१८) रूपक-सन्देहयोः—

'सन्देहः' प्रकृतेऽन्यस्य संशयः प्रतिभोत्थितः ।'

इति विश्वनाथः । उदाहरणम्—

'पङ्कजं वा सुधांशुर्वेत्यस्माकन्तु न निर्णयः ॥'

इति जयदेवः । अत्र कान्तामुखे पङ्कजं वा सुधांशुर्वे'ति कोटिद्वयावलम्बि-ज्ञानात् 'सन्देहा'ख्योऽलङ्कारः ।

उभावपि आरोपमूलकौ, परन्तु रूपके प्रकृतेऽप्रकृतारोपो निश्चयजन्य ए
सन्देहे तु प्रकृते (उपमेये) अप्रकृतानाम् (उपमानाम्) अनेककोटिकः संशयः

(१९) रूपक-रूपकातिशयोक्त्योः—

'अतिशयिता'=प्रसिद्धिमतिक्रान्ता, उक्ति'रतिशयोक्तिः' । रूपकस्य= विषयिणः, उपमानस्येति यावत्, अतिशयोक्तिः 'रूपकातिशयोक्तिः' । उपमेयः नुक्त्वैव यत्र उपमानद्वारेण कार्यकारणभावकथनं तत्र रूपकातिशयोक्तिः' ।

लक्षिताऽपीयं जयदेवेनेत्थम् ।

'रूपकातिशयोक्तिश्चेत् रूप्यं रूपकमध्यगम् ।'

'रूप्यं'=विषयः, उपमेयमिति तात्पर्यम् । उदाहरणम्—

'पश्य, नीलोत्पलद्वन्द्वाद् निस्सरन्ति सिताः शराः ॥''

अत्र नेत्रकटाक्षावुपमेयावनुक्त्वैव नीलोत्पलः—सितशररूपोपमानद्वारेण कार्यकारणभावकथनात् 'रूपकातिशयोक्तिः' ।

इयमेव सामान्यातिशयोक्तिः' ।

उभावपि यद्यप्यारोपमूलकौ, तथापि रूपके उपमेयकथनं, रूपकातिशयोक्तौ तु उपमेयानुक्तिरिति वैपरीत्यम् तयोः ।

(२०) रूपक-निदर्शनयोः—

'निश्चित्य दर्शनं=साक्षात् प्रकटनं 'निदर्शना' । अनुपद्यमानवाक्यार्थद्वयस्य सङ्गतिर्यत्र सादृश्ये पर्यवस्यति तत्र 'निदर्शना' । तदुक्तम्—

'वाक्यार्थयोः सदृशयोरैक्यारोपो 'निदर्शना' ।

उदाहरणम्—

'या दातुः सौम्यता सेयं सुधांशोरकलङ्कता ॥'

अत्र दातृपुरुषसौम्यत्वस्योपमेयवाक्यार्थस्य चन्द्रनिष्कलङ्कत्वस्योपमानवाक्यार्थस्य च यत्तच्छब्दाभ्यामैक्यारोपात् 'निदर्शना' ।

उभावपि यद्यपि अभेदारोपजन्यावेव, किन्तु रूपके उपमेये उपमानारोपस्यैव प्राधान्यं, निदर्शनायान्तु उपमेयोपमानवाक्यार्थयोः परस्परमभेदारोपस्यैवेति प्रातिकूल्यम् ।

(२१) उल्लेखस्य रूपकपरिणामादिभ्यो भेदः—

एकस्मिन्नारोपविषये (उपमेये) अनेककर्तृकोऽनेकरूपारोप 'उल्लेखः' । तदुक्तम्—

'बहुभिर्बहुधोल्लेखादस्यो'ल्लेख' इष्यते' ।

उदाहरणम्—

'स्त्रीभिः कामः प्रियैश्चन्द्रः कालः शत्रुभिरैक्षि सः ॥'

अत्र स्त्री-प्रिय-शत्रुभिः कामत्व-चन्द्रत्व-कालत्वारोपकरणा'दुल्लेखः' । उल्लेखे एककर्तृकं आरोपः, रूपकपरिणामादिषु तु अनेककर्तृक आरोपः ।

(२२) अपह्नुति-पर्यस्तापह्नुत्योः

अपह्नुतिर्निरूपितैव । धर्मिणि वर्तमानेऽपि तथ्यवस्तुधर्मस्यातथ्यधर्मिण्यारोपाय तन्निषेधे 'पर्यस्तापह्नुतिः' । तदुक्तम्—

'पर्यस्तापह्नुति'र्यत्र धर्ममात्रं निषिध्यते ।

उदाहरणम्—

'नायं सुधांशुः, किं तर्हि ? सुधांशुः प्रेयसीमुखम् ॥'

अत्र 'सुधांशुः'रूपतथ्यधर्मिणि सत्यपि 'प्रेयसीमुखे'तथ्यधर्मिणि 'सुधांशुत्व'-रूपधर्मारोपार्थं सुधांशौ सुधांशुत्वरूपधर्मनिषेधः ।

अपह्नुतौ धर्मिणि अन्यधर्मारोपः, पर्यस्तापह्नुतौ तु प्रकृतधर्मिणो धर्मः अन्यत्र स्थाप्यते इति विषमता तयोः ।

(२३) अपह्नुत्युत्प्रेक्षयोः—

द्वावपि निरूपितौ । यद्यपि द्वयोरपि बीजमारोपाध्यवसाय एव, परन्तु अपह्नुतौ तथ्यनिषेधपूर्वकमतथ्यारोपः, उत्प्रेक्षायान्तु तथ्यनिषेधं विना अतथ्य-सम्भावना इति परस्परं पृथक्त्वं तयोः ।

(२४) छेकापह्नुति-व्याजोक्त्योः—

परभीतिहेतुकस्वतथ्यगोपने 'छेकापह्नुतिः' । उक्तं हि—

'छेकापह्नुति'रन्यस्य शङ्कया तथ्यनिह्नवे ।'

उदाहरणम्—

'प्रजल्पन् मत्पदे लग्नः, कान्तः किं ? नहि नूपुरः ॥'

अत्र स्वकीयनर्मसखीं प्रति कान्तवृत्तं ब्रुवाणया नायिकया परपृष्टया सत्या 'न हि नूपुर' इति स्वकान्तपादपतनवृत्तान्तोऽपह्नूयते ।

परेण गुप्तवृत्ते तर्किते तस्य (गुप्तवृत्तस्य) कपटवचनेन गोपने 'व्याजोक्तिः' । जयदेवोऽप्यत्र आह—

'व्याजोक्तिः' शङ्कमानस्य छद्मना वस्तुगोपनम् ।

उदाह्रियते—

'सखि ! पश्य, गृहारामपरागैरस्मि धूसरा ।।'

अत्र चौर्यरते भूपृष्ठलग्नधूलिधूसरता नायिकया गृहारामपरागधूलिधूस प्रतिपाद्य गोप्यते ।

द्वावपि अपह्नवमूलकौ, किन्तु छेकापह्नुतौ गोपनकृता गोपनीयार्थः प्र मुच्यते व्याजोक्तौ तु नोच्यते इति विसदृशता तयोः ।

(२५) छेकापह्नुति-वक्रोक्त्योः—

तात्पर्यान्तरेणोक्तस्य वाक्यस्यार्थान्तरसङ्क्रमने 'वक्रोक्तिः' । सा च 'श्ले वक्रोक्तिः' 'काकुवक्रोक्ति'श्चेति द्विविधा । तदुक्तम्—

'वक्रोक्तिः श्लेषकाकुभ्यां वाच्यार्थान्तरकल्पनम् ।'

उदाहरणम्—

'मुञ्च मानं, दिनं प्राप्तं, मन्द ! नन्दी हरान्तिके ।।'

अत्र 'दिनोदयो जातः, अभिमानं त्यज' इत्यभिप्रायेण कान्तेनोक्तस्य वाक् कान्ता 'दिनोदयो जातः, प्राप्तं मा मुञ्चे'त्यर्थं निष्कासितवती ।

द्वयोरपि बीजं तथ्यवस्तुगोपनमेव, परं छेकापह्नुतौ गोपनकृता स्वकीयै रर्थान्तरं क्रियते, वक्रोक्तौ तु परोक्तेरिति विसदृशत्वम् ।

(२६) उत्प्रेक्षा-भ्रान्तिमतोः—

द्वावपि निरूपितौ । यद्यपि द्वयोरपि बीजमप्रकृतज्ञानमेव, तथापि उत्प्रेक्षा मप्रकृतज्ञानसम्भावना, भ्रान्तिमति तु अप्रकृतज्ञानस्य निश्चयात्मकत्वमे विषमत्वम् ।

(२७) उत्प्रेक्षा-सन्देहयोः—

यद्यपि द्वावपि सन्देहमूलकावेव, तथापि उत्प्रेक्षायामुपमानपक्षे उत् कोटिकः संशयः, सन्देहे तु कोटिद्वयावलम्बिसंशयस्यैव प्राधान्यम् ।

(२८) उत्प्रेक्षाऽनुमानयोः—

कार्यद्वारा कारणकल्पनाया'मनुमान'मलङ्कारः । तदुक्तम्—

'अनुमान'ञ्च कार्यादेः कारणाद्यवधारणम् ।'

उदाहरणम्—

'अस्ति किञ्चित्, यदनया मां विलोक्य स्मितं मनाक् ।।'

अत्र स्मितोदयरूपकार्येण नायिकाहृदयस्थितभावरूपकारणमनुमीयते ।

यद्यपि द्वावपि सम्भावनामूलकौ, परन्तु उत्प्रेक्षायां विषयिणः (उपमानस्य) अनिश्चिततया प्रतीतिः, अनुमाने तु निश्चिततया इति विषमत्वम् ।

(२९) उत्प्रेक्षा-रूपकातिशयोक्त्योः—

द्वावपि अध्यवसायमूलकौ, किन्तु उत्प्रेक्षायामध्यवसायस्य साध्यतया विषयस्य (उपमेयस्य) उपादानं, रूपकातिशयोक्तौ तु अध्यवसायस्य सिद्धतया विषयिणा (उपमानेन) विषयो (उपमेयो) निगीर्यते इति विभिन्नत्वम् ।

(३०) भ्रान्तिमत्-सन्देहयोः—

यद्यपि द्वावपि मिथ्याध्यवसितिमूलकावेव, परं भ्रान्तिमति एककोटिकं ज्ञानं, सन्देहे तु अनेककोटिकं ज्ञानमिति महदन्तरम् ।

(३१) भ्रान्तिमान्मीलितयोः—

मीलितं निरूप्यते प्रथमम् । सदृशवस्तूनां बाहुल्येन यत्रोपमानं पृथग् न प्रतीयते तत्र 'मीलितं' नामकोऽलङ्कारः । तदुक्तम्—

'मीलितं बहुसादृश्याद् भेदवच्चेन्न लक्ष्यते ।'

यथोदाह्रियते—

'रसो नाऽलक्षि लाक्षायाश्चरणे सहजारुणे ।।'

अत्र अतिसाम्यात् स्वाभाविकाऽरुणताया उपमानं लाक्षारसो न प्रतीयते ।

यद्यपि द्वयोरपि कस्याप्येकस्य वस्तुनोऽभाव एव प्रतीयते, किन्तु भ्रान्तिमति प्रकृते एव अप्रकृतप्रतीतिः,मीलिते–तु आश्रयैक्यात् अतिसाम्याच्च प्रकृताऽप्रकृतयोः प्रकृतस्यैवाऽप्रतीरिति विसङ्गतिस्तयोः ।

(३२) भ्रान्तिमद्रूपकातिशयोक्त्योः—

द्वावपि निरूपितौ । यद्यपि द्वावपि साधर्म्यमूलकौ, द्वयोरपि प्रकृतस्याऽनुपादानपूर्वकमप्रकृतस्य प्रतीतिश्च । एवं साम्ये सत्यपि भ्रान्तिमति अप्रकृतज्ञानं भ्रमदोषजन्यं रूपकातिशयोक्तौ तु अप्रकृतज्ञानमाहार्यम् ।

(३३) 'भ्रान्तिमत्-तद्गुणयोः—

'तद्गुणः स्वगुणत्यागादन्यतः स्वगुणोदयः ।'

इति पीयूषवर्षो जयदेवः । एवञ्च—स्वगुणत्यागपूर्वकमन्यदीयगुणग्रहणे 'तद्-गुणो'ऽलङ्कार इति फलितम् । यथा—

'पद्मरागारुणं नासामौक्तिकं तेऽधराश्रितम् ।।'

अत्र नासामौक्तिकस्य श्वेतगुणत्यागेन अधरगुणरक्तग्रहणात् 'तद्गुण'संज्ञकोऽलङ्कारः ।

भ्रान्तिमति स्मर्यमाणस्याऽऽरोपः, तद्गुणे तु गृह्यमाणस्येति वैलक्षण्यम्

(३४) भ्रान्तिमद्भाविकयोः—

'भावः'=कवेरभिप्रायोऽस्तीति भाविकम्' ।

'भाविकं' भूतभाव्यर्थसाक्षाद्दर्शनवर्णनम् ।

इति आलोककारः । तथा च—अतीताऽनागतयोर्भूतभविष्यतोर्वर्त्तमानत्वं 'भाविक'मिति निर्गलितं तत्त्वम् । लक्ष्यञ्चेदम्—

'अलं विलोकयाऽद्यापि युध्यन्तेऽत्र सुरासुराः ।।'

अत्राऽतीतभूतकालिकदेवासुरसंग्रामस्य प्रत्यक्षानुभूततया वर्णनात् 'भाविकम्'

यद्यपि अलङ्कारद्वयेऽपि निमित्तमप्रत्यक्षवस्त्वन्तरप्रतीतिरेव, तथापि भ्रान्तिमति अतत्पदार्थस्य तत्पदार्थतया बोधः, भाविके तु भूतभाविनोर्वस्तुनोः भूतभावितयैव अवगमनमिति तयोः पृथक्त्वम् ।

(३५) सन्देहाऽतिशयोक्त्योः—

यद्यपि द्वयोरपि बीजमप्रकृतप्रतीतिरेव, किन्तु सन्देहे उपमेये उपमानसंशय स्यैवाऽलङ्कारविषयत्वम्, अतिशयोक्तौ तु—

'मध्ये तव सरोजाक्षि ! पयोधरभराहितम् ।

अस्ति नास्तीति सन्देहः कस्य चित्ते न भासते ? ।'

इत्यादौ केवलं संशयमात्रमेवाऽलङ्कारत्वव्यवस्थापने निमित्तमिति भेदः ।

(३६) मीलित-सामान्ययोः—

'सामान्यं' नाम प्रकृताऽप्रकृतयोरप्रतीतिः । तदुक्तम्—

'सामान्यं' यदि सादृश्याद् भेद एव न लक्ष्यते ।'

लक्ष्यञ्चेदम्—

'पद्माकरप्रविष्टानां मुखं नाऽलक्षि सुभ्रुवाम् ।।'

अत्र कमलमुखयोर्भेद एव न लक्ष्यते ।

द्वयोरपि बीजमुपमानोपमेयनिष्ठपार्थक्यज्ञानाभाव एव, किन्तु मीलिते उपमानस्वरूपाऽज्ञानं,सामान्ये तु निवर्तकहेतुज्ञानाभावकृताऽभेदज्ञानमिति विलक्षणत्वम्

(३७) मीलितोन्मीलितयोः—

सादृश्यादभेदाध्यवसायप्राप्तावपि कारणविशेषद्वारा भेदज्ञाने 'उन्मीलितम्'

'हेतोः कुतोऽपि वैशिष्ट्यात् स्फूर्ति'रुन्मीलितं' मतम् ।'

इति चन्द्रालोकेऽपि । यथा—

'लक्षितान्युदिते चन्द्रे पद्मानि च मुखानि च ।।'

अत्र सादृश्यात् मुखकमलयोरभेदे प्राप्तेऽपि चन्द्रोदयरूपकारणविशेषात् तयोर्भेदो ज्ञातः (चन्द्रोदये हि कमलानि सङ्कुचन्ति)।

मीलिते उपमानोपमेययोरभेदाध्यवसायमात्रमेव, उन्मीलिते तु भेदप्रतीतिरेव तयोरिति प्रबलविरोधस्तयोः ।

(३८) मीलित-तद्गुणयोः—

उभावपि निरूपितौ । अलङ्कारद्वये पार्थक्यज्ञानाभावस्य सत्तायामपि मीलिते भेदवतो धर्मिणोऽप्रतीतिर्न तु धर्ममात्रस्य, तद्गुणे तु धर्ममात्रस्यैव तिरस्कारः धर्मिणश्च पृथगवभासः इति सूक्ष्ममन्तरम् ।

(३९) सामान्य-तद्गुणयोः—

सामान्येऽपरित्यक्तनिजगुणयोर्धर्मिणोरपृथगवभासः, तद्गुणे तु गुणमात्रस्यैव तिरस्कारः धर्मिणश्च पृथगवभासः इति विलक्षणता तयोः ।

(४०) अनुमानाऽर्थापत्त्योः—

अनुमानं निरूपितम् । 'अर्थापत्ति'स्तु 'अर्थस्य'=पदार्थान्तरस्य, 'आपत्तिः' =आपतनम् । दण्डापूपन्यायेन एकपदार्थसिद्धयाऽपरपदार्थसिद्धौ अर्थापत्तिः । (दण्डापूपन्याये दण्डाकर्षणे तदवलम्बिनामपूपानामाकर्षणं स्वयं सञ्जायते ।)

तदुक्तम्—

'अर्थापत्तिः' स्वयं सिद्धयेत् पदार्थान्तरवर्णनम् ।'

यथोदाहरति स्म जयदेवः—

'स जितस्त्वन्मुखेनेन्दुः, का वार्ता सरसीरुहाम् ? ॥'

अत्र इन्दुजये सरसीरुहविजयः स्वयं सिद्धः, यतो हि 'इन्दुः कमलविजेता' इति प्रसिद्धम् ।

अनुमाने साध्यसाधकयोर्व्याप्तिरूपसम्बन्धेन ज्ञानम्, अर्थापत्तौ तु ज्ञाप्यज्ञापकयोर्नियतसामान्यन्यायेन पदार्थान्तरप्रतिपत्तिरिति पार्थक्यं प्रतिभासते ।

(४१) अनुमान-काव्यलिङ्गयोः—

काव्याभिमतं लिङ्गं 'काव्यलिङ्गम्' । तल्लक्षणन्तु—

'स्यात् 'काव्यलिङ्गं' वागर्थो नूतनार्थसमर्पकः ।'

एवञ्च—समर्थनसापेक्षस्याऽर्थस्य पदद्वारा वाक्यद्वारा वा समर्थने 'काव्यलिङ्गम्' । तथा च द्विविधमिदम्—पदार्थहेतुकं वाक्यार्थहेतुकञ्चेति ।

'जितोऽसि मन्द ! कन्दर्प ! मच्चित्तेऽस्ति त्रिलोचनः ॥'

इति वाक्यार्थहेतुककाव्यलिङ्गलक्ष्यं, 'मन्मथविजयोऽसाध्यः' इति मन्मदर्पण
विजेतुस्त्रिलोचनस्य चित्ते वर्तमानत्ववर्णनात् । नार्थं

द्वयोरपि बीजं तथ्यसिद्ध्यर्थं हेतुप्रदर्शनमेव, परमनुमाने ज्ञापको हेतु
काव्यलिङ्गे तु निष्पादकः समर्थको वा हेतुरित्यन्तरम् । किञ्च अनुमाने साध्य
साधनभावस्य वाच्यत्वं, काव्यलिङ्गे तु कार्यकारणभावस्य गम्यत्वमित्यपि भेदप्रश्नं

(४२) अनुमान-प्रश्नोत्तरयोः—

'प्रश्नस्य उत्तरं' 'प्रश्नोत्तरम्' ।

'प्रश्नोत्तरं' क्रमेणोक्तौ स्यूतमुत्तरमुत्तरम् ।'

इति तल्लक्षणम् । अर्थस्तु 'उत्तरम्=उत्तररूपम्' 'उत्तरं'=प्रश्नरूपं स्ती
एकत्र उत्तरेण प्रश्नकल्पने प्रश्नेन वा उत्तरकल्पने 'प्रश्नोत्तर'मलङ्कारः ।

'यत्रासौ वेतसी पान्थ ! तत्राऽसौ सुतरा सरित् ॥'

इति उत्तरेण प्रश्नोन्नयनस्योदाहरणम् 'अत्र कुत्र सरित्तरणमार्गः' ? प्रेन
प्रश्नोन्नयनं उदाहरणवाक्येन क्रियते ।

अनुमाने एकपक्षगतत्वेन साध्यसाधनयोर्निर्देशः, प्रश्नोत्तरे तु साध्यसाधनलि
योरभाव एवेति वैभिन्न्यप्रतिपत्तिः । र्योः

(४३) अर्थापत्ति-निदर्शनयोः—

उभावपि निरूपितौ । अर्थापत्तौ दण्डापूपन्यायात् पदार्थान्तरप्रतीतिर्म
निदर्शनायान्तु वाक्यार्थस्य सादृश्ये पर्यवसानमिति भेदावगमः ।

(४४) काव्यलिङ्गाऽर्थान्तरन्यासयोः—

'अर्थान्तरम्'=अन्योऽर्थः, तस्य 'न्यासः'=स्थापनम् 'अर्थान्तरन्यासः
'भवेदर्थान्तरन्यासोऽनुषक्तार्थान्तराभिधा ।' युः

इति ग्रन्थकारः । तथा च-मुख्यार्थवर्णनपूर्वकमर्थान्तरवर्णने'ऽर्थान्तरन्यासः
'हनुमानब्धिमतरत्, दुष्करं किं महात्मनाम् ? ॥' स

अत्रोदाहरणे 'हनुमानब्धिमतरत् इति वाक्यविशेषस्य 'दुष्करं किं महात्म
नाम् ?' इति सामान्यवाक्येन समर्थनात् 'अर्थान्तरन्यासः' ।

यद्यप्युभयोरपि बीजं समर्थ्यसमर्थकभाव एव; तथाऽपि काव्यलिङ्गे सम
समर्थकयोः सामान्यविशेषभावसम्बन्धाऽतिरिक्तसम्बन्धः, अर्थान्तरन्यासे तु सम
सामान्यविशेषभावसम्बन्ध एव । किञ्च—काव्यलिङ्गे द्वावपि वाक्यार्थौ प्रस्तुत
पयोगिनौ, अर्थान्तरन्यासे तु पूर्ववाक्यप्रकरणसम्बद्धमन्यच्चाऽप्राकरणिकं भव

दर्पणकारमतेन काव्यलिङ्गे निष्पादको हेतुः, अर्थान्तरन्यासे तु समर्थको हेतुरिति पार्थक्यप्रपञ्चः ।

(४५) काव्यलिङ्ग-प्रश्नोत्तरयोः—

काव्यलिङ्गे निष्पादको हेतुः, प्रश्नोत्तरे तु ज्ञापको हेतुः । (यतो हि उत्तरं प्रश्नं नैव जनयति ।) हेतुहेतुमद्भावस्तु द्वयोरपि ।

(४६) काव्यलिङ्ग-परिकरयोः—

विशेषणे प्रकृताशयोपयोगिनि सति 'परिकर'नामधेयोऽलङ्कारः । तदुक्तम्—

'अलङ्कारः परिकरः' साभिप्राये विशेषणे ।'

'परिकरोति'=प्रकृतार्थमुपकरोतीति 'परिकरः'=साभिप्रायशब्दः, सोऽस्मिन्नस्तीति 'परिकरः'=तदाख्योऽलङ्कारविशेषः' इति नाम्नो निर्वचनम् । यथा—

'सुधांशुकलितोत्तंसस्तापं हरतु वः शिवः ।।'

अत्र 'सुधांशुकलितोत्तंस' इति शिवविशेषणं शैत्यप्रतिपादनत्वलक्षणेनाऽऽशयेन 'युष्मत्तापहरण'रूपवाक्यार्थे उपयोगी ।

अनयोः साभिप्रायपदार्थोक्तिरूपतया साम्ये सत्यप्ययमेव भेदः, यत् काव्यलिङ्गे पदार्थो वाक्यार्थो वा प्रकृतवाक्यार्थोपयोगी, परिकरे तु प्रस्तुतवाक्यार्थोपयुक्ताऽर्थान्तरप्रतिपादनद्वारा विशेषणं प्रकृतवाक्यार्थे उपयुज्यते इति ।

(४७) परिकर-परिकराङ्कुरयोः—

परिकरस्य अङ्कुरः 'परिकराङ्कुरः' । तल्लक्षणन्तु—

'साभिप्राये विशेष्ये तु भवेत् 'परिकुराङ्कुरः ।'

एवञ्च—साभिप्रायविशेष्यत्वं 'परिकराङ्कुरत्व'मिति निर्गलितोऽर्थः ।

'चतुर्णां पुरुषार्थानां दाता देवश्चतुर्भजः ।।'

इति उदाहरणम् । अत्र चतुर्भिर्भुजैश्चतुर्णां पुरुषार्थानां=धर्मार्थकाममोक्षाणां, युगपद्दाने सौकर्यमिति 'चतुर्भुज' इति विशेष्यपदं प्रकृतवाक्यार्थोपयोगि ।

उभयोर्विशेषणविशेष्यभावमूलकत्वात् साभिप्रायपदार्थोक्तिर्हेतुकत्वाच्च साम्ये सत्यपि पार्थक्यमिदमेव, यत् परिकरे विशेषणस्य प्रकृतवाक्यार्थोपयोगित्वं परिकराङ्कुरे तु विशेष्यपदं प्रकृतवाक्यार्थोपयोगि ।

(४८) अतिशयोक्ति-भाविकयोः—

द्वयोरपि अप्रकृतप्रतीतिरूपतया साम्येऽपि अतिशयोक्तौ प्रकृतेऽप्रकृतारोपः, भाविके तु अप्रकृतवृत्तस्य प्रत्यक्षगोचरीभावत्वेनाऽध्यसानाभावः इति विषयभिन्नता ।

(४९) अतिशयोक्त्युदात्तयोः—

उत्कर्षेणाऽदीयते=गृह्यते इ'त्युदात्तम्'। सम्पदाधिक्यवर्णने महतां स्याऽन्याङ्गत्वे वा 'उदात्त'मलङ्कारः। उक्तं हि—

'उदात्त'मृद्धिश्चरितं श्लाघ्यं चाऽन्योपलक्षणम्।'

'उपलक्षणं' नाम अङ्गभावः। उदाहरणम्—

'सानौ यस्याऽभवद् युद्धं तद्धूर्जटिकिरीटिनोः ॥'

अत्र किरातरूपधारिणः शिवस्य अर्जुनस्य च युद्धवर्णनमङ्गत्वेन तेन च हिमालयस्याऽङ्गिन उत्कर्षः प्रतीयते इति द्वितीयमुदात्तम्।

अतिशयोक्तौ सम्पदाधिक्यवर्णनाऽभाववत्त्वं वर्तते, उदात्ते तु समृद्धि वर्णनमलङ्कारत्वव्यवस्थापने निमित्तमिति भेदः।

(५०) अत्यन्तातिशयोक्त्यसङ्गत्योः—

अत्यन्तमतिशयेनोक्ति'रत्यन्तातिशयोक्तिः'। कार्यकारणाधिकरणपौर्वा व्यतिक्रमत्व'मत्यन्तातिशयोक्तित्वम्'। तदेवाह स्म जयदेवः—

'अत्यन्तातिशयोक्ति'स्तत्पौर्वापर्यव्यतिक्रमे।'

उदाह्रियते—

'अग्रे मानो गतः पश्चादनुनीता प्रियेण सा ॥'

अत्र मानापनोदनेऽनुनयो निमित्तम्। अनुनयात् पूर्वमेव मानापनोदनमिति वर्णनात् लक्षणसङ्गतिः।

न सङ्गति'रसङ्गतिः'। कार्यकारणविभिन्नाधिकरणत्व'मसङ्गतित्वम्'। उक्तं

'आख्याते भिन्नदेशत्वे कार्यहेत्वो'रसङ्गतिः'।

लक्ष्यञ्चेदम्—

'त्वद्भक्तानां नमत्यङ्गं भङ्गमेति भवक्लमः ॥'

अत्र नमनरूपं कारणं भक्ताङ्गनिष्ठं भङ्गरूपञ्च कार्यं भवक्लमनिष्ठम् कार्यकारणयोर्वैयधिकरण्यात् 'असङ्गतिः'।

उभयोरपि कार्यकारणयोर्व्यतिक्रम एव अलङ्कारत्वव्यवस्थापकः, अत्यन्तातिशयोक्तौ कार्यकारणयोर्व्यतिक्रमः कालगतः असङ्गतौ तु स देशगतः इति भेदः।

(५१) तुल्ययोगिता-दीपकयोः—

'तुल्या'=समाना, 'योगिता'=अन्वयो यस्यां सा 'तुल्ययोगिता'।

प्रस्तुतयोरप्रस्तुताऽप्रस्तुतयोर्वा क्रियया अथवा नयेन समानधर्माभिसम्बन्धे 'तुल्य-योगिता'।

'क्रियादिभिरनेकस्य तुल्यता 'तुल्ययोगिता ॥'

इति चन्द्रालोकेऽपि । यथा—

'सङ्कुचन्ति सरोजानि स्वैरिणीवदनानि च ।
प्राचीनाचलचूडाग्रचुम्बिबिम्बे सुधाकरे ॥'

अत्र चन्द्रोदये वर्णनीये प्रस्तुतयोः सरोज-स्वैरिणीवदनयोः सङ्कोचलक्षणैक-क्रियाभिसम्बन्धात् 'तुल्ययोगिता'।

दीपकं तु उपमादीपकभेदावसरे निरूपितमेव ।

उभयोरपि समानधर्माभिसम्बन्धतया सत्यपि साम्ये पार्थक्यमेतदेव, यत् तुल्ययोगितायां प्रस्तुतयोरप्रस्तुतयोर्वा गुणक्रियारूपैकधर्माभिसम्बन्धः, दीपके तु प्रस्तुताऽप्रस्तुतयोरेव गुणक्रियारूपैकधर्माभिसम्बन्धः ।

—:०:—

षष्ठो मयूखः

१ प्रश्नः—विभावानुभावव्यभिचारिभावानां स्थायिभावस्य च स्वरूपं दर्श्यं, के व्यभिचारिणः ? के च स्थायिनः ? इत्यपि प्रतिपादयत ।

उत्तरम्—लोके यानि कारणकार्यसहकारिकारणानि, तान्येव काव्ये विभावानुभावव्यभिचारिभावा उच्यन्ते ।

तत्र विशेषेण भावयन्ति=वासनारूपतया स्थितान् रत्यादीन् स्थायिनः आस्वादयोग्यतां नयन्तीति 'विभावाः'=काव्यकारणानि नायकनायिकाचन्द्रचन्दनादीनि । स च विभावो द्विविधः—आलम्बनविभावः, उद्दीपनविभावश्च । आलम्बनविभावोऽपि द्विविधः—विषयालम्बनविभावः, आश्रयालम्बनविभावश्च । यं विषयमवलम्ब्य रसः प्रवर्तते स 'विषयालम्बनविभावः' यथा रामचन्द्रादिः । यश्चाऽऽश्रयमवलम्ब्य रसः प्रवर्तते सः 'आश्रयालम्बनविभावः', यथा नायिकादिः । यश्च रसमुद्दीपयति स 'उद्दीपनविभावः' । स च चतुर्विधः । यथोक्तम्—

'आलम्बनगुणश्चैव तच्चेष्टा तदलङ्कृतिः ।
तटस्थश्चेति विज्ञेयश्चतुष्कोद्दीपनक्रमः ॥'

आलम्बनगुणाः=नायकनायिकास्थितलावण्यशीलादयः । तच्चेष्टा=भावहावादिः । तदलङ्कृतिः=भूषणादिः तटस्थोद्दीपनविभावाश्च=चन्द्रचन्दनवसन्तादयः ।

'अनु'=स्थाय्युद्बोधानन्तरं स्थायिभूतान् रत्यादीन् भावयन्ति=आस्वा
न्तीति 'अनुभावा'। कटाक्षभुजाक्षेपादीनि कार्याण्येवा'ऽनुभाव'संज्ञकानि
विशेषेण अभितः=सर्वतः स्थायिनं शरीरे चालयन्ति=सञ्चारयन्ति ते 'व्यभिचा
भावाः'। अत एव 'सहायभाव'पदेन 'सञ्चारिभाव'पदेन च सम्बोध्यन्ते।
निर्वेदादीनि सहकारिकारणान्येव 'व्यभिचारिभावा' उच्यन्ते।

ग्रन्थकारेण तु एतेषां स्वरूपमित्थं प्रतिपादितम्—

'आलम्बनोद्दीपनात्मा विभावः कारणं द्विधा।
कार्योऽनुभावोऽभावश्च सहायो व्यभिचार्यपि॥'

तिष्ठतीति 'स्थायी'। तादृशो रत्यादिर्भावः 'स्थायिभावः'। तल्ल
साहित्यदर्पणे विश्वनाथकविराजेनेत्थं प्रकाशितम्—

'अविरुद्धा विरुद्धा वा यं तिरोधातुमक्षमाः।
आस्वादाङ्कुरकन्दोऽसौ भावः 'स्थायी'ति सम्मतः॥

एवञ्च अन्तःकरणवृत्तिस्वरूपस्य रत्यादेराशु विनाशित्वेऽपि संस्कार
चिरकालमवस्थायित्वात् रसप्रतीतिकालेऽनुसन्धानाच्च स्थायित्वमिति फ
'कति स्थायिभावाः ?' इत्यग्रे वक्ष्यामः।

त्रयस्त्रिंशद्व्यभिचारिभावा वर्तन्ते। ते च क्रमश इत्थम्—

'निर्वेदग्लानिशङ्काख्यास्तथाऽसूया-मद-श्रमाः।
आलस्यञ्चैव दैन्यञ्च चिन्ता मोहः स्मृतिः धृतिः॥ १॥
व्रीडा चपलता हर्ष आवेगो जडता तथा।
गर्वो विषाद औत्सुक्यं निद्राऽपस्मार एव च॥ २॥
सुप्तं प्रबोधोऽमर्षश्चाऽप्यवहित्थमथोग्रता।
मतिर्व्याधिस्तथोन्मादस्तथा मरणमेव च॥ ३॥
त्रासश्चैव वितर्कश्च विज्ञेया व्यभिचारिणः।
त्रयस्त्रिंशदमी भावाः समाख्यातास्तु नामतः॥ ४॥

एतेषां स्वरूपाणि साहित्यदर्पणे लक्षितानि। तानि तु विस्तरभय
लिखितान्यत्र।

रसानां नवत्वेन स्थायिभावा अपि नवसंख्याकाः ते च क्रमशो यथा'

'रतिर्हासश्च शोकश्च क्रोधोत्साहौ भयं यथा।
जुगुप्सा विस्मयश्चेत्थमष्टौ प्रोक्ताः शमोऽपि च॥'

इति दर्पणकाराः । तत्र रतिः शृङ्गारस्य स्थायिभावः । एवमग्रेऽपि हासो
ास्यस्य, शोकः करुणस्य, क्रोधो रौद्रस्य, उत्साहो वीरस्य, भयं भयानकस्य,
ुप्सा वीभत्सस्य, विस्मयोऽद्भुतस्य, शमः निर्वेदो वा च शान्तस्य स्थायिभावो
ः । उपर्युक्तकारिकायां 'शम' पदेन 'निर्वेद'स्य सूचना दत्ता वर्तते ।

२ प्रश्नः—'रस'सामान्यलक्षणं तद्भेदांश्च प्रतिपाद्य, 'तेवृं त्तीनां सामञ्जस्यं
ते न वे'ति विविच्यताम् ।

उत्तरम्—रस्यते=आस्वाद्यतेऽसौ इति 'रसः' । तल्लक्षणन्तु चन्द्रालोके इदम्—

'गलद्वेद्यान्तरोद्भेदं हृदयेष्वजडात्मनाम् ।
मिलन्मलयजालेप इवाह्लादं विकासयन् ।। १ ।।
काव्ये नाटये च कार्ये च विभावाद्यैर्विभावितः ।
आस्वाद्यमानैकतनुः स्थायिभावो 'रसः'स्मृतः ।। २ ।।'

व्याख्या चाऽस्येयम्—

'अजडात्मनां हृदयेषु मिलन्मलयजालेप इव, गलद्वेद्यान्तरोद्भेदम् आह्लादं
ासयन्, काव्ये नाटये च कार्ये च विभावाद्यैर्विभावितः, आस्वाद्यमानैकतनुः,
यिभावो 'रसः स्मृतः' इति वाक्ययोजना ।

'अजडात्मनां'=सहृदयानां, हृदयेषु=चित्तेषु, 'मिलन्मलयजालेप इव'—
ँश्चासौ मलयजस्य=चन्दनस्य, आलेप इव, 'गलद्वेद्यान्तरोद्भेदं'=ज्ञाना-
विकासशून्यम्, 'आह्लादम्'=आनन्दं, 'विकासयन्'=उन्मेषयन् 'काव्ये'—
ात्मके, 'नाटये च'=दृश्यकाव्ये च, 'कार्ये च'=नाट्यचित्रप्रेक्षणे च, 'विभा-
:'=विभावाऽनुभावव्यभिचारिभावैः, 'विभावितः'=अभिव्यक्तः, 'आस्वाद्य-
कतनुः'—आस्वाद्यमाना=चर्व्यमाणा, एका=अद्वितीया, तनुः=शरीरं यस्य
'स्थायिभावः'=रत्यादिरूपः, 'रसः स्मृतः'='रस' पदेन स्मर्यते स्म । इति
पदार्थसङ्गतिः ।

तात्पर्यञ्चेदम्—यथा दुग्धं दधिरूपेण विपरिणमति, तथैव प्राक्तनवासना-
ातो रत्यादिरूपः स्थायिभावः विभावाऽनुभावव्यभिचारिभावैः संवलितः सन्
या विपरिणमति, सहृदयैरास्वाद्यते च ।

रसास्तु नवैव, तद्यथा—

'शृङ्गार-हास्य-करुण-रौद्र-वीर-भयानकाः ।
बीभत्साऽद्भुतसंज्ञौ च शान्तोऽपि नवमो रसः ।।'

रसैर्वृत्तीनां सामञ्जस्यं वर्तत एव । तथाहि—अक्षरविन्यासविशेषव्यङ्ग्याः

वृत्तयस्तु तदैवोत्पद्यन्ते यदा तेषु रसानुकूलाः वर्णाः सञ्जायन्ते । एवञ्च रसवृत्ति सति रसोपकारिका वृत्तयः इति फलितम् ।

एवमेव रसैः रीतीनामपि सामञ्जस्यं वर्तते । रीतीनां समासव्यङ्ग्यत्व वृत्तीनाञ्च वर्णानुपूर्विव्यङ्ग्यत्वमिति वृत्तिरीत्योः पार्थक्यं वर्तते ।

३ प्रश्नः—करुणविप्रलम्भशृङ्गार-करुणरसयोः रौद्रवीररसयोश्च सल भेदं प्रदर्शयत ।

उत्तरम्—'शृङ्गार'शब्दस्य व्युत्पत्तिरियम्—'शृणाति'=चरमदशाप्राप हिनस्ति कामुकान् इति 'शृङ्गं'=मन्मथोद्भेदः, तत् 'ऋच्छति'=प्राप्नोति 'शृङ्गारः'=तत्संज्ञको रसः । स तावत् द्विविधः—सम्भोगो, विप्रलम्भश्च । संयोगकालावच्छिन्नत्वे 'सम्भोगशृङ्गारः', वियोगकालावच्छिन्नत्वे च 'विप्रलम्भ शृङ्गारः' । विप्रलम्भशृङ्गारोऽपि पूर्वराग-मान-प्रवास-करुणाऽऽत्मकत्वेन च विधः । तत्र 'करुणविप्रलम्भशृङ्गाररस'लक्षणन्तु साहित्यदर्पणे विश्वनाथे लक्षितम्—

> 'यूनोरेकतरस्मिन् गतवति लोकान्तरं पुनर्लभ्ये ।
> विमनायते यदैकस्तदा भवेत् 'करुणविप्रलम्भाऽऽख्यः ।।'

'करुणरस'लक्षणन्तु पीयूषवर्षजयदेवेन, चन्द्रालोके लक्षितमित्थम्—

> 'अभीष्टविप्रयोगाश्रुपातग्लान्यादिभिः क्रमात् ।
> विभावाद्यैर्युतः शोकस्थायी स्यात् 'करुणो' रसः ।।'

करुणरसे शोकः स्थायिभावः । 'शोच्यतेऽनेने'ति 'शोकः' तल्लक्षणन्तु साहि त्यदर्पणे इत्थम्—

'इष्टनाशादिभिश्चेतो वैक्लव्यं 'शोक'शब्दभाक् ।'

आलम्बनं नायिका नायकश्च । उद्दीपनमभीष्टविप्रयोगादिः । अश्रुपातादय नुभावाः । ग्लान्यादयो व्यभिचारिणः ।

द्वयोरपि विभावादीनामैक्येऽपि स्थायिभावभेदात् भिन्नत्वम् । (करुणवि लम्भशृङ्गाररसे रतिः स्थायी, करुण रसे च शोकः स्थायी ।) विप्रलम्भशृङ्गा रसे करुणात्मके लोकान्तरगमनेन वियोगे सत्यपि पुनः संयोगेच्छया रतिर्न वि श्यति । पुनरलभ्ये शरीरान्तरेण वा लभ्ये करुणाख्य एव रसः' इति दर्पणका

अपरञ्चोक्तमिदं साहित्यदर्पणे—

> 'शोकस्थायितया भिन्नो विप्रलम्भादयं रसः ।
> विप्रलम्भे रतिः स्थायी पुनः संभोगहेतुकः ।।'

'आचतुस्समाससप्तमञ्च यथेष्टैरष्टमादिभिः।
समासः स्यात् पदैनं स्यात् समासः सर्वथाऽपि च ॥ १ ॥
'पाञ्चालिकी' च 'लाटीया' 'गौडीया' च यथारसम्।
'वैदर्भी' च यथासख्यं चतस्रो रीतयः स्मृताः ॥ २ ॥

'यथारस'मिति। रसमनतिक्रम्येति 'यथारसम्'। हास्य-करुण-भयानक-बीभत्साऽद्भुत-शान्तरसेषु पाञ्चालिकीलाटीये रीती। रौद्रवीररसयोर्गौडीया रीतिः। श्रृङ्गाररसे च वैदर्भी रीतिः।

६ प्रश्नः—मधुरादिवृत्तीनां लक्षणानि उदाहरणसङ्गमनपुरस्सरं प्रतिपाद्य, स्थायिनिर्वेद-व्यभिचारिनिर्वेदयोः को भेदः? इति स्पष्टं प्रतिपादयत।

उत्तरम्—प्रथम मयूखे काव्यलक्षणावसरे 'अनेकवृत्ति'रिति पदमभिहितम्। 'वृत्ति' पदेन त्रिधा वृत्तयः स्वीक्रियन्ते आचार्यैः। तत्र प्रथमा नाट्योपयुक्ता वृत्तिश्चतुर्विधा—कैशिकी, सात्वती, आरभटी, भारती चेति। द्वितीया नियतवर्णगतरसविषयकव्यापाररूपा पञ्चविधा—मधुरा, प्रौढा, परुषा, ललिता, भद्रा इति तृतीया शब्दव्यापाररूपा त्रिविधा—अभिधा, लक्षणा, व्यञ्जना चेति। 'वृत्ति'सामान्यलक्षणन्तु 'विलासविन्यासक्रमो 'वृत्ति'रिति काव्यमीमांसायां राजशेखरेण प्रतिपादितम्।

सम्प्रति नियतवर्णगतरसविषयकव्यापाररूपाया द्वितीयवृत्तेर्विवेचनमावश्यकम्। तत्र मधुरां वृत्तिं व्याचष्टे इत्थं ग्रन्थकृत्—

'मधुरायां समाक्रान्ता वर्गस्थाः पञ्चमैर्निजैः।
लकारश्च लसंयुक्तो ह्रस्वव्यवहितौ रणौ।'

एवं च यत्र वृत्तौ ङकारसहिताः क-ख-ग-घ-वर्णाः, तथैव ञवर्णसहित-चछजझाऽक्षराणि, णकारसहिताः ट-ठ-ड-ढ वर्णाः, नवर्णसहितानि तथदधाऽक्षराणि, मकारसहितपफबभाः, लयुक्तो लवर्णः, ह्रस्वर्णसहितौ रेफणकारौ च वर्तेते सा मधुरावृत्तिः कथ्यते इति कारिकार्थः।

उदाहरणम्—

'अङ्गभङ्गोल्लसल्लीला तरुणी स्मरतोरणम्'

अत्र ङकाराधःस्थौ गकारौ, लकारसहितौ लकारौ रेफणकारौ च ह्रस्वाक्षरसहितौ; अतो मधुरावृत्तिः।

यत्र वृत्तौ टठडढङञमसंज्ञकान्यक्षराणि वर्जयित्वा रेफसहितानि क-ख-ग-घ-च-छ-ज-झ-प-फ-ब-भ-य-ण-संज्ञकानि अक्षराणि रेफव्याप्तानि, तवर्गश्च ककार-

पकाराभ्यां रेफेण च व्याप्त; ककारस्य मूर्धनि स्थितस्तकारश्चेति वर्णविन्यासः, तत्र 'प्रौढा'।

जयदेवोऽप्याह—

'रेफाक्रान्ता वर्ग्ययणाष्टवर्गात् पञ्चमाद् ऋते।
कपाक्रान्तस्तवर्गः स्यात् प्रौढायाञ्च कमूर्धता ॥' इति।

उदाहरणम्—

'तर्ककर्कशपूर्णोक्तिप्राप्तोत्कटधियां वृथा।'

अत्र ककारद्वयं णकारश्च रेफाक्रान्ताः, 'प्राप्तोत्कटे'ति पदे पकारककाराभ्यां सहितस्तकारः, ककारस्य च मूर्धनि तकारः इति 'प्रौढा' वृत्तिः।

परुषावृत्तेर्लक्षणमिदम्—

"सर्वैरूर्ध्वैः सकारस्य सर्वैं रेफस्य सर्वथा।
रहोर्द्वधा नु संयोगः परुषायां शषौ स्वतः ॥"

सकारस्योपरि स्थितैः सर्वैर्वर्णैः संयोगे, रेफस्य उपर्यधोभावेन स्थितत्वात् समस्तैरक्षरैः संयोगे, रेफहकारयोरुपर्यधोभावेन संयोगे, असंयुक्तयोः शकारषकारयोश्च वर्तमानयोः 'परुषा'वृत्तिरिति कारिकार्थः।

उदाहरणम्—

'वीप्सोत्सर्पन्मुखाग्राद्र्रं बर्हो जह्ले कृशस्तृषम्।'

अत्र 'वीप्सोत्सर्प'दिति सकारोर्ध्वस्थौ पकारतकारौ, पकारगकारदकाराश्च रेफस्योपर्यधःस्थायिनः, सकारहकारौ च मिथ उपर्यधोभावापन्नौ, शकारसकारौ च असंयुक्तौ इति परुषावृत्तिः।

ललितावृत्तिं लक्षयति—

'लकारोऽन्यैरसंयुक्तो लघवो घमधा रसौ।
ललितानाम—'

अयं भावः—यत्र लकारोऽन्यैरतिरिक्तैः कखगघादिभिर्वर्णैरसंयुक्तो घकार-मकारयकाररकारसकाराश्च वर्णान्तराऽसंयुक्ताः सन्ति तत्र 'ललिता'वृत्तिः।

उदाहरणम्—

'ललानारभसं धत्ते घना०'

अत्र रकारभकारसकारधकाराणामसंयुक्तानां वर्णानां सत्त्वाद् 'ललिता' नाम्नी वृत्तिर्वर्तते।

'तथा शेषा भद्रायाम्—'

इति 'भद्रा' वृत्तिलक्षणम् । 'मधुरा'-'प्रौढा'-'परुषा'-'ललिता'-वृत्तिष्वव्यवस्थितानां वर्णानां स्थितित्वे 'भद्रा'वृत्तिरिति तदर्थः । एवञ्च 'भद्रा' वृत्तौ सर्वं एव वर्णा असंयुक्ता भवन्ति इति निर्गलितं तत्त्वम् । उदाहरणम्—

'···टोपे महीयसी ॥'

अत्र सर्वाण्येवाऽक्षराणि संयोगरहितानि । उपसंहरति—

'—इतिवृत्तयः ॥'

इति='मधुरा'-'प्रौढा'-'परुषा'-'ललिता'-'भद्रा'ख्याः पञ्चवृत्तयः अक्षरविन्यासविशेषव्यङ्ग्याः भवन्ति ।

स्थायिनिर्वेद-व्यभिचारिनिर्वेदयोः पार्थक्यम्—

उभयोर्भेदविमर्शात् पूर्वं 'निर्वेद'सामान्यलक्षणन्तावत् विचारयामः । तत्र साहित्यदर्पणकारविश्वनाथकविराजेन तत्स्वरूपमित्थं निर्मितमधस्तनकारिकायाम्—

'तत्त्वज्ञानाऽऽदीर्ष्यादे'र्निर्वेदः' स्वाऽवमाननम् ।
दैन्य-चिन्ताऽश्रु-निःश्वास-वैवर्ण्योच्छ्वसितादिकृत् ॥'

'तत्त्वज्ञानं' नाम नित्याऽनित्यवस्तुविवेकः देहविषयादावनुपादेयत्वज्ञानं वा । प्रथमादादिपदात् पुराणश्रवणादीनां ग्रहणं, द्वितीयादिपदात् च कुकर्मोद्भावनादीनाम् । 'स्वावमाननं'—स्वस्मिन्=देहावच्छिन्ने आत्मनि, अवमाननं=तुच्छत्वबुद्धिः ।

"चित्तस्य खेदो 'निर्वेद'स्तत्त्वज्ञानोदयादिभिः ।"

इति स्वरूपमपि कैश्चिदाचार्यवर्यैर्निरमायि । 'संसारदुःखानुभवो निर्वेदः' इति 'पौर्णिमासी'टीकाकारः । एवञ्च—'तत्त्वज्ञानापत्तीर्ष्यादिजन्यः संसारदुःखानुभवमयः स्वावमानो 'निर्वेदः' इति तत्स्वरूपं फलितम् । स च दैन्यचिन्ताश्रुनिःश्वासवैवर्ण्योच्छ्वसितादिभिरनुभावैः (कार्यैः) अभिव्यज्यते ।

उभयोर्भेदविमर्शावसरे 'रसगङ्गाधर'कारैः पण्डितराजजगन्नाथशर्मभिः इत्थं स्थिरीकृतम्—'नित्याऽनित्यवस्तुविचारजन्मा विषयविरागख्यो निर्वेदः स्थायी, गृहकलहादिजस्तु व्यभिचारी' इति ।

आचार्यान्तरैरपीत्थं भेदः प्रतिपादितस्तयोः—

'स्थायी स्याद्विषयेष्वेव तत्त्वज्ञानाद्भवेद्यदि ।
इष्टाऽनिष्टवियोगाप्तिकृतस्तु व्यभिचार्यसौ ॥'

एवञ्च—तत्त्वज्ञानजन्यनिर्वेदस्य शान्तरसे स्थायित्वं, कारणान्तरजन्यनिर्वेदस्य च रसान्तरे करुणादौ व्यभिचारितत्वमिति स्थायिनिर्वेद-व्यभिचारिनिर्वेद-

योरन्तरम् । अत एव स्थायिनिर्वेदवति शान्ते रसे क्षमादयोऽनुभावाः व्यभिचारिनिर्वेदवत्सु करुणादिषु रसान्तरेषु तु दैन्यचिन्ताऽश्रुनिःश्वासविवर्णतोच्छ्वसितप्रभृतयोऽनुभावाः ।' इति निर्गलितं तात्पर्यम् ।

—:०:—

सप्तमो मयूखः

१. प्रश्नः—व्यञ्जनावृत्तिं भेदपूर्वकं विविच्यध्वनेरेकपञ्चाशद्भेदान् गणयत।

उत्तरम्—व्यज्यते=अर्थान्तरं प्रतीयते यया (वृत्त्या) सा 'व्यञ्जना' वृत्तिः। यथा कामिनी कटाक्षेण पुरुषायाऽर्थान्तरं प्रकाशयति तथैव वाच्यार्थलक्ष्यार्थभिन्नाऽर्थान्तरप्रतीतिविषयतां कुर्वतः शब्दस्य व्यापारः (अर्थान्तरप्रकाशनरूपः) 'व्यञ्जना'संज्ञकः । तदेवाह ग्रन्थकारः—

'साम्मुख्यं विदधानायाः स्फुटमर्थान्तरे गिरः ।
कटाक्ष इव लोलाक्ष्या व्यापारो व्यञ्जनात्मकः ॥'

एवञ्च—वाच्यार्थलक्ष्यार्थभिन्नाऽर्थान्तरप्रत्यायिकत्वं व्यञ्जनावृत्तित्वमितिफलितम् । सा च पूर्वं तावत् भेदद्वयभिन्ना—शाब्दी व्यञ्जना, आर्थीव्यञ्जना चेति । शब्दपरिवृत्त्यसहिष्णुत्वेऽर्थान्तरबोधकत्वं शाब्दीव्यञ्जनात्वं, शब्दपरिवृत्तिसहत्वेऽर्थान्तरप्रत्यायकत्वमार्थीव्यञ्जनात्वमिति तयोर्लक्षणे ।

प्रकारान्तरेण व्यञ्जना तावत् त्रिविधा—अभिधामूला व्यञ्जना, लक्षणामूला व्यञ्जना, व्यञ्जनामूला व्यञ्जना चेति । अभिधामूलाव्यञ्जना तत्र भवति, यत्र वाच्यार्थप्रतीत्यनन्तरकाल एव प्रकरणादिसहायेनाऽर्थान्तरस्य प्रतिपत्तिः । लक्षणामूला व्यञ्जना सा, यत्र लक्षणा प्रयोजनरूपस्याऽर्थान्तरस्याऽवगमः । व्यञ्जनामूला व्यञ्जना सा, यत्र वाच्यार्थप्रतीत्यनन्तरकालोत्पन्नव्यङ्ग्याद्दर्थान्तरं प्रतीयते । तत्र लक्षणामूला व्यञ्जना द्विधा–गूढव्यङ्ग्या, अगूढव्यङ्ग्या चेति ।

ध्वनि-गुणीभूतव्यङ्ग्य-चित्रसंज्ञकेषु उत्तममध्यमाऽधमकाव्येषु ध्वनिकाव्यमुत्तमकाव्यं वर्तते । 'ध्वनि'शब्दस्य तावद् विग्रहः पञ्चविधः—

(१) ध्वनति यः सः (व्यञ्जक शब्दः) 'ध्वनिः' ।
(२) ध्वनयति यः सः (व्यञ्जकोऽर्थः) 'ध्वनिः' ।
(३) ध्वन्यते यः सः (व्यङ्ग्याऽर्थः) 'ध्वनिः' ।
(४) ध्वन्यते येन सः (व्यञ्जनाव्यापारः) 'ध्वनिः' ।
(५) ध्वन्यते यस्मिन् सः (काव्यविशेषः) 'ध्वनिः' ।

व्यपेक्षया व्यङ्ग्यार्थप्रतीतिनिमित्ताऽऽह्लादजनकं 'ध्वनिकाव्यत्वम्' । तदुक्तम्—
यद्वचज्यमानं मनसः स्तैमित्याय स नो ध्वनिः ।'
'स्तैमित्याय'=आर्द्रीभावाय, आह्लादायेति यावत् ।

तस्य हि ध्वनिकाव्यस्य एकपञ्चाशत् भेदाः । तथाहि—तत्र पूर्वं ध्वनेरभिधा-लक्षणामूलत्वेन द्वौ भेदौ—अविवक्षितवाच्यध्वनिः, विवक्षितान्यपरवाच्य-ध्वनिश्चेति । तत्र अविवक्षितवाच्यध्वनेरपि द्वौ भेदौ—अर्थान्तरसङ्क्रमितवाच्य-ध्वनिः, अत्यन्ततिरस्कृतवाच्यध्वनिश्चेति । अविवक्षितवाच्यध्वनौ अर्थान्तरसङ्क्र-मितवाच्यध्वनिरत्यन्ततिरस्कृतवाच्यध्वनिश्च प्रत्येकं पदवाक्यगतत्वेन द्विविधः इत्यविवक्षितवाच्यध्वनिश्चतुर्विधः ।

विवक्षितान्यपरवाच्यध्वनेरपि (अभिधामूलकध्वनेरपि) संलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्य-ध्वनिः, असंलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यध्वनिश्चेति द्वौ भेदौ । तत्र संलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यध्वनेः (वस्त्वलङ्काररूपस्य) त्रयो भेदाः—शब्दशक्त्युत्थध्वनिः, अर्थशक्त्युत्थध्वनिः, शब्दार्थोभयशक्त्युत्थध्वनिश्च । तत्र शब्दशक्त्युत्थध्वनेः वस्तुध्वनिः अलङ्कारध्वनि-रिति द्वौ भेदौ । एतयोरुभयोरपि भेदयोः पदवाक्यगतत्वेन चत्वारो भेदाः शब्द-शक्त्युत्थध्वनेः । अर्थशक्त्युद्भवो ध्वनिः प्रथमतः त्रिधा परिणमति—स्वतःसम्भवी, कविप्रौढोक्तिसिद्धः, कविनिबद्धवक्तृप्रौढोक्तिसिद्धश्चेति । एतेषां प्रत्येकं चत्वारो भेदाः—वस्तुवाच्यार्थोत्थितवस्तुध्वनिः,वस्तुरूपवाच्यार्थोत्थिताऽलङ्काररूपध्वनिः, अलङ्काररूपवाच्यार्थोत्थितवस्तुध्वनिः, अलङ्काररूपवाच्यार्थोत्थिताऽलङ्काररूप-ध्वनिश्चेति । एवमर्थशक्त्युद्भवध्वनेर्द्वादशभेदाः । एते पदवाक्यप्रबन्धगतत्वेन षट्-त्रिंशत्प्रकारतां यान्ति । शब्दार्थोभयशक्तिजध्वनिस्तु वाक्यनिष्ठोऽलङ्काररूप एक-विध एव । असंलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यध्वनिः (रसादिरूपः) पद-वाक्य-पदांश-वर्ण-रचना प्रबन्धगतत्वेन षट्प्रकारकः ।

एवमत्रेत्थं सङ्कलनम्—अविवक्षितवाच्यध्वनेश्चतुर्विधत्वं विवक्षितान्यपर-वाच्यध्वनेश्च सप्तचत्वारिंशद्भेदाः, मिथो मिलित्वा एकपञ्चाशद्भेदाः । त्रिविधेन सङ्करेण एकया च संसृष्ट्या सम्मिलितास्त्वेते असंख्याः स्युः ।

तथा चाऽत्रैते सङ्ग्रहश्लोकाः—

'अविवक्षितवाच्यस्य द्वौ भेदौ वाच्यमेव चेत् ।
अर्थान्तरे संक्रमितमत्यन्तं वा तिरस्कृतम् ।। १ ।।
द्वौ विवक्षितवाच्यस्य लक्ष्याऽलक्ष्यक्रमात्मकौ ।
चत्वारिंशद्युतैकेन भेदाः षट् चाऽनयोः क्रमात् ।। २ ।।

त्रिधा शब्दार्थतद्युग्मशक्तिजन्मा स्फुटक्रमात् ।
रसभावतदाभासप्रमुखस्त्वस्फुटक्रमात् ॥ ३ ॥
वस्त्वलङ्कारयोर्व्यक्तेर्भेदौ द्वौ शब्दशक्तिजौ ।
अर्थशक्तिसमुत्थस्य भेदा द्वादश तद्यथा ॥ ४ ॥
चत्वारो वस्त्वलङ्कारमलङ्कारस्तु वस्तु यत् ।
अलङ्कारमलङ्कारो वस्तु वस्तु व्यनक्ति तत् ॥ ५ ॥
वक्तुः कविनिबद्धस्य कवेर्वा प्रौढिनिर्मितः ।
स्वसिद्धो वा व्यञ्जकोऽर्थश्चत्वारस्त्रिगुणास्ततः ॥ ६ ॥
शब्दार्थोभयभूरेकः स च वाक्यैकसंश्रय ।
पदैकदेशे रचनावर्णवाक्यपदेष्वपि ॥ ७ ॥
प्रबन्धे चेति षोढाऽसौ रसाद्याख्योऽस्फुटक्रमः ।
एषु सप्तदशस्वेकं परित्यज्याऽस्फुटक्रमम् ॥ ८ ॥
ये षोडशाद्या द्विगुणास्ते स्युर्वाक्यपदाश्रयात् ।
प्रबन्धेऽपि द्वादश स्युरर्थशक्तिभुवो भिदः ॥ ९ ॥
द्वात्रिंशद् द्वादशैकः षट् सर्वं सङ्कलितध्वनेः ।
भेदाः स्युरेकपञ्चाशत् सम्भिन्नास्तु सहस्रशः ॥ १० ॥

२ प्रश्नः—वक्तृस्यूत-स्वाङ्कुरित-वाच्यव्यङ्ग्यानि सभेदं लक्ष्यलक्षणनिर्देश पुरस्सरं प्रतिपादयत ।

उत्तरम्—आर्थीव्यञ्जनानिरूपणव्याजेन जयदेवेन पुनर्व्यङ्ग्यार्थस्य विभा गान्तरमभिहितम् । तथाहि—व्यङ्ग्यं तावत् पुनस्त्रिधा परिणमति; वक्तृस्यूतं स्वङ्कुरितं, वाच्यव्यङ्ग्यञ्चेति ।

तत्र वक्तृतात्पर्यविषयीभूतं व्यङ्ग्यं 'वक्तृस्यूत'संज्ञकम् । तदेवाह ग्रन्थनिर्माता

'वक्तृस्यूतं बोधयितुं व्यङ्ग्यं 'वक्तुरभीप्सितम् ।'

'गङ्गायां घोष' इत्यस्योदाहरणम् । अत्र शैत्यपावनत्वादि व्यङ्ग्यं वक्तृता त्पर्यविषयीभूतत्वात् 'वक्तृस्यूत'पदाभिधेयम् । एतच्चतुर्विधमिति तत्प्रपञ्चोऽ दर्शयिष्यते ।

वक्तुरभिप्रायाऽविषयीभूतं व्यङ्ग्यं 'स्वाङ्कुरित'नामकम् । तदुक्तम्—

'स्वाङ्कुरितमतद्रूपं स्वयमुल्लसितं गिरः ।'

यथा—'जगामाऽस्तञ्च भानुमान्' । अत्र 'अभिसरणमुपक्रम्यताम्', 'सान्ध्य विधिर्निर्वर्त्यताम्' 'गावो गोष्ठेषु प्रवेश्यन्ताम्', इत्याद्यनेकविधव्यङ्ग्यानि स्वशब्द

भिधेयानि बोद्धव्यवैशिष्ट्यात् प्रतीतिपथमवतरन्ति। एतानि च व्यङ्ग्यानि तृतात्पर्यविषयीभूतत्वेन नैव वर्तन्ते। अस्यापि भेदविस्तरोऽग्रे द्रष्टव्यः।

नानार्थेषु एकस्यार्थस्य प्रकरणादिनाऽभिधागम्यत्वेऽर्थान्तराणां व्यञ्जनयोपापने च 'वाच्यव्यङ्ग्यम्'। 'प्रकरणादिने'त्यादिपदात् संयोगादयो गृह्यन्ते। ते यथा—

'संयोगो विप्रयोगश्च साहचर्यं विरोधिता।
अर्थः प्रकरणं लिङ्गं शब्दस्याऽन्यस्य सन्निधिः॥ १॥
सामर्थ्यमौचिती देशः कालो व्यक्तिः स्वरादयः।
शब्दार्थस्याऽनवच्छेदे विशेषस्मृतिहेतवः॥ २॥' इति।

'लिङ्गं'=चिह्नम्। 'व्यक्तिः'=शब्दस्य पुंस्त्वादिलिङ्गम्। 'स्वरादय' इत्यापदात् चेष्टा-संकेतयोर्ग्रहणम् एतदेव लक्षयति पीयूषवर्षः—

'नानाप्रभेदाः नियताः क्वचित्प्रकरणादिना।
अर्थेऽर्थमन्यं यं व्यक्ति तद्वाच्यव्यङ्ग्यमिष्यते॥'

उदाहरणम्—

'भद्रात्मनो दुरधिरोहतनोर्विशालवंशोन्नतेः कृतशिलीमुखसङ्ग्रहस्य।
यस्याऽनुपप्लुतगतेः परवारणस्य दानाम्बुसेकसुभगः सततं करोऽभूत्॥

अत्र प्रकरणवशात् नृपरूपोऽर्थोऽभिधया प्रतीयते गजरूपद्वितीयार्थश्च नियमितः व्यञ्जनयाऽवगम्यते।

अथ वक्तृस्यूत—स्वाङ्कुरियोर्भेदप्रपञ्चनम्—

'वक्तृस्यूतव्यङ्ग्यं' चतुर्विधम्—बोद्धुश्चातुर्विध्यात्। वक्तृस्यूते हि कश्चित् धारणो' बोद्धा भवति। वक्तृतात्पर्याऽनभिज्ञत्वं 'साधारण'बोद्धृत्वम्। यथा—तोऽस्तमर्कं' इत्यत्र बोद्धा वक्तृतात्पर्यमनवगम्यैव स्वकीयाभीष्टसाधनानुकूलर्यं जनयति। यद्वा—अप्रयोज्यत्वे सति प्रतिपाद्यः 'साधारणबोद्धैव'। यथा—

'कुम्भं गृहीत्वा विपुलं सत्वरं समुपागता।
श्रमस्वेदनिरासाय विश्राम्यामि सखि! क्षणम्॥'

अत्र प्रश्नं विनैव सखीं प्रति सुरतगोपनं प्रतिपादितम्। यद्वा—'साधारणो द्धा'=आलङ्कारिकोऽनालङ्कारिकश्च।

उदाहरणम्—

'उपदिशति कामिनीनां यौवनमद एव ललितानि।'

अत्र आविष्कारातिशयरूपो व्यङ्ग्यः सर्वजनबोध्यः। इदमेवाऽगूढव्यङ्ग्य मिति मम्मटभट्टाः।

कश्चित् सम्बोध्य प्रतिबोधितो बोद्धा भवति। उदाहरति—

'त्वं दूति ! निरगाः कुञ्जं, न तु पापीयसो गृहम्।
किंशुकाभरणं देहे दृश्यन्ते कथमन्यथा ?॥'

अत्र दूती नायिकया सम्बोध्य 'त्वं तन्निकटे रन्तुं गतासी'ति प्रतिज्ञापिता कश्चित्तटस्थो बोद्धा भवति। आमन्त्रणशून्यत्वेऽपि वक्तुरभिप्रायाभिज्ञत्वं 'तटस्थ त्वम्' उदाह्रियते—

'पश्य, निश्चल-निष्पन्दा बिसिनीपत्रे राजते बलाका।
निर्मलमरकतभाजनपरिस्थिता शङ्खशुक्तिरिव॥'

अत्र तटस्थेन केनचित् सखीं प्रति नायिकयोक्तेन वाक्येन संकेतस्थ बोधितम्। कश्चित् बोधितेन प्रतिबोधितो बोद्धा भवति।

'मथुरापथिक ! मुरारेरुपगेयं द्वारि बल्लवीवचनम्।
पुनरपि यमुनाकूले कालियगरलानलज्वालाः॥'

इति लक्ष्यम्। अत्र गोपीबोधितेन पथिकेन संकेताय कृष्णः प्रतिबोधयितुमिष्टः एवं वक्तृस्यूतं व्यङ्ग्यं बोद्धृचातुर्विध्यात् चतुर्विधः। तदेवाह पुस्तकप्रणेता—

'कश्चित् साधारणः कश्चिदामन्त्र्य प्रतिबोधितः।
कश्चित्तटस्थः कश्चिच्च बोधितप्रतिबोधितः॥
इत्येवं बोद्धृवैचित्र्याद् वक्तृस्यूतं चतुर्विधम्॥'

स्वाङ्कुरितं व्यङ्ग्यन्तु द्विविधम्—उपेक्षाविषयभूतं, निह्नवविषयभूतञ्च

'उपेक्षानिह्नवाभ्याञ्च द्विधा 'स्वाङ्कुरितं' मतम्।'

तत्र उपेक्षाविषयभूतं व्यङ्ग्यं नाम वक्तुरुपेक्षाविषयभूतम्। यथा—

'भ्रम धार्मिक ! विस्रब्धः स शुनकोऽद्य मारितस्तेन।
गोदानदीकच्छकुञ्जवासिना दृप्तसिंहेन॥'

अत्र 'मदीय संकेतस्थानं गोदानदीकच्छकुञ्जगृहम्' इति व्यङ्ग्यं वक्तुरु पेक्षाविषयम्। वक्तृतात्पर्यविषयं व्यङ्ग्यन्तु 'सिंहोऽस्ति तत्र, अतो मा गम इत्येवं रूपम्।

निह्नवस्य अनेकविधत्वेन वक्तृनिह्नवविषयभूतं व्यङ्ग्यमप्यनेकविधम् तथाहि, भूतभविष्यद्वर्तमानात्मककालत्रैविध्यवशात् निह्नवोऽपि त्रिविधः। निह्न

ग्रन्थकृताऽपीत्थं सङ्क्रमितमुदाहरणम्—

'तथा वाच्यस्य सिद्धयङ्गं नीरर्थोवारिधेर्यथा ॥'

(एतत्प्रश्नसदृशा अपि प्रश्नाः सम्भवन्ति । यथा—'असुन्दर'व्यङ्ग्यनिरूपणं कृत्वा 'सम्प्राप्ते नयने तस्या' इत्यादौ स्थितं 'गुणीभूतव्यङ्ग्य'काव्यभेदविशेषं लक्ष्ये संगमय्य प्रतिपाद्यम् । एतेषामुत्तराणि परिशिष्टदर्शितविषयानुक्रमणिकासाहाय्येनानयैव रीत्या लेखनीयानि ।)

—: ० :—

नवमो मयूखः

१ प्रश्नः—'लक्षणा' सामान्यलक्षणं विवृत्य तद्भेदगणनां कुर्वन्तु ।

उत्तरम्—'लक्षणा'शब्दो हि लक्षणं 'लक्षणे'ति भावव्युत्पत्त्या, 'लक्ष्यतेऽनयेति लक्षणे'ति करणव्युपत्त्या विगृह्यते । भावव्युपत्त्या लक्ष्यार्थज्ञानस्य, करणव्युत्पत्त्या लक्ष्यार्थज्ञानजनकव्यापारस्य च 'लक्षणा'त्वं भवति । 'कुटिला', 'भक्तिः', 'उपचारः' 'गुणवृत्तिः', 'अमुख्यवृत्तिः' इत्यादीनि लक्षणाया एव नामान्तराणि ।

मुख्यार्थप्रतिपादनादिच्छायां मुख्यार्थसम्बन्धो रूढिप्रयोजनाऽन्यतरहेतुकः मुख्यार्थातिरिक्तोऽर्थो यया प्रतिपाद्यते, सा शब्दे कल्पिता अर्थे च स्वाभाविकी व्यापाररूपा शक्ति'र्लक्षणा'नाम्ना व्यवह्रियते । यदाह पुस्तकप्रणेता—

'मुख्याऽर्थस्याविवक्षायां 'पूर्वा''ऽर्वाची' च रूढितः ।
प्रयोजनाच्च सम्बद्धं वदन्ती 'लक्षणा' मता ॥'

एवञ्च—मुख्यार्थातिरिक्तार्थस्य रूढिहेतुकत्वे 'पूर्वा' (निरूढा) लक्षणा, तस्य च प्रयोजनहेतुकत्वे 'अर्वाची' (प्रयोजनवती) लक्षणा इति, लक्षणा प्रथमं तावद् द्विविधेति फलितम् ।

अन्वयाऽनुपपत्तिस्तात्पर्यानुपपत्तिश्चेति द्वौ लक्षणावकाशहेतू ।

यथा—'गङ्गायां घोष' इत्यत्र घोषस्य प्रवाहेऽसम्भावित्वेनान्वयानुपपत्तेः 'गङ्गा'पदेन 'तट'रूपोऽर्थो लक्ष्यते । मुख्यार्थलक्ष्यार्थयोः सामीप्यसम्बन्धः । शैत्यपावनत्वादिप्रयोजनसद्भावेनाऽत्र 'अर्वाची' लक्षणा ।

'काकेभ्यो दधि रक्ष्यता'मित्यत्र तात्पर्यानुपपत्त्या 'काक'पदेन 'जीवान्तराणा'-मपि लक्षणया प्रतीतिः । अत्र रूढिहेतुकं पूर्वा लक्षणा ।

'पूर्वा लक्षणा' तावत् षड्विधा । तथाहि—पूर्वं सा द्विविधा—'लक्ष्यवाचकपदामीलना' (सारोपा), 'लक्ष्यवाचकपदमीलना' (साध्यवसाना) चेति । एतौ

द्वावपि 'पूर्वा' लक्षणाभेदौ प्रत्येकं त्रिविधौ—सिद्धा (उद्देश्यवाचकपदनिष्ठा) साध्या (विधेयवाचकपदनिष्ठा), साध्याङ्गिनी (विधेयान्वयिवाचकपदनिष्ठा) चेति । एवं षड्विधा 'पूर्वा' लक्षणा ।

'अर्वाची'लक्षणायास्तावत् षट्त्रिंशद्भेदाः । तथाहि सिद्धा-साध्या-साध्याङ्गिनीभिस्त्रैविध्यं प्राप्ता 'लक्ष्यवाचकपदामीलना'—'लक्ष्यवाचकपदमीलना'ख्यौ द्वौ भेदौ 'अर्वाची'लक्षणायामपीति सा पूर्वं षड्विधा । तत्र 'सिद्धा'लक्षणायाः द्वौ भेदौ 'स्फुटव्यङ्ग्या' 'अस्फुटव्यङ्ग्या' चेति । अत्रापि स्फुटव्यङ्ग्या पूर्वं द्विविधा—'तटस्थप्रयोजना' 'सर्वंगतप्रयोजना' चेति । एवमस्फुटव्यङ्ग्याऽपि तटस्थप्रयोजनाऽर्थंगतप्रयोजनानामकभेदाभ्यां द्विविधा । अर्थंगतप्रयोजनाऽपि द्विविधा—लक्ष्यार्थंनिष्ठा, लक्षकार्थंनिष्ठा चेति ।

एवमत्रेदं सङ्कलनम्—लक्ष्यवाचकपदामीलनायां सिद्धाया षड्भेदाः—

(१) तटस्थप्रयोजना स्फुटव्यङ्ग्या सिद्धा ।

(२) अर्थंगतप्रयोजना स्फुटव्यङ्ग्या सिद्धा । (लक्ष्यार्थंनिष्ठा)

(३) लक्षकार्थनिष्ठाऽर्थंगतप्रयोजना स्फुटव्यङ्ग्या सिद्धा ।

अस्फुटव्यङ्ग्याप्येवमेव त्रिविधा इति सिद्धा षड्विधा । तथैव साध्यायाः षट्, साध्याङ्गिन्याश्च षट् इति लक्ष्यवाचकपदामीलने अष्टादश भेदाः । एवमेव लक्ष्यवाचकपदमीलनायामपि अष्टादश भेदाः सम्भवन्तीति द्वयोः सङ्कलनेन 'अर्वाची' लक्षणा षट्त्रिंशत्प्रकारा ।

एवं 'पूर्वायाः' षट्, 'अर्वाच्या'श्च षट्त्रिंशदिति लक्षणायाः द्विचत्वारिंशद्भेदाः प्रकारान्तरेणाऽर्वाचीलक्षणायाः पूर्वं भेदचतुष्टयम्—(१) गौणी सारोपा, (२) गौणी साध्यावसाना, (३) शुद्धा सारोपा, (४) शुद्धा साध्यावसाना चेति । तत्र शुद्धा सारोपाऽपि द्विविधा—उपादानलक्षणा, लक्षणलक्षणा चेति । इति षड्विधा प्रयोजनवतीलक्षणा काव्यप्रकाशकारमम्मटभट्टमतेन ।

पुनरपि ग्रन्थकृन्मतेन विशेषणविशिष्टलक्ष्यलक्षकपदाभ्यां लक्षणा द्विविधा—(१) विशेषणवती साध्या, (२) विशेषणवती सिद्धा चेति ।

सहेतुनिर्हेतुभेदेन पुनरपि लक्षणा द्विविधा—हेतुसहिता लक्षणा, हेतुरहिता लक्षणा चेति ।

उपाध्यन्तरेण लक्षणा पुनः षड्विधा—शब्दे, पदार्थे, वाक्यार्थे, संख्यायां, कारके, लिङ्गे च स्थितत्वात् एतस्याः ।

लक्षणा अविवक्षितवाच्यध्वनेः द्विविधस्य प्रसवित्री, तथैव सा रूपकातिशयोक्त्यादीनामलङ्काराणां च प्रयोजिकेति तस्याः निरूपणं नितान्तमनिवार्यम् ।

२ प्रश्नः—लक्षणाभेदेषु शुद्धागौण्योः सारोपासाध्यसानयोश्च लक्षणविवेचनपुरस्सरं मिथो भेदं प्रतिपाद्य यथासम्भवमुदाहरणेषु स्पष्टयत ।

उत्तरम्—उत्तरदानात् पूर्वं वयमेतद् विचारयामो यल्लक्षणाप्रयोजकसम्बन्धाः के ? विषयेऽत्र पीयूषवर्षः प्राह—

'आभिमुख्यात् सन्निधानात् तथाऽऽकारप्रतीतितः ।
कार्यकारणभावात् सा वाच्यवाचकभावतः ॥ १ ॥
इत्येवमादेः सम्बन्धात् किञ्चाऽन्यस्माच्चतुष्टयात् ।
सादृश्यात् समवायात् सा वैपरीत्यात् क्रियान्वयात् ॥ २ ॥' इति ।

सादृश्यात् गुणानां सादृश्यसम्बन्धवती लक्षणा गुणयोगात् 'गौणी'त्युच्यते । सादृश्यसम्बन्धेतरसम्बन्धवती (अर्थात् कार्यकारणभावप्रभृतिसम्बन्धवती) लक्षणा तु 'शुद्धा' पदेन सम्बोध्यते ।

गौणीलक्षणायां सादृश्यसम्बन्धस्यास्तित्वं, शुद्धालक्षणायां तु तदभाववत्वमिति वैषम्यं तयोः ।

तथाहि—'गौर्वाहीक' इत्यत्र वाहीकनिष्ठगुणानां गोनिष्ठगुणैः सादृश्यसम्बन्धः । अतोऽत्र गौणीलक्षणा । एवञ्चात्र 'गोगतगोत्वनिष्ठजाड्यमान्द्यादिगुणसदृशजाड्यमान्द्यादिगुणविशिष्टो वाहीकः' इति शाब्दबोधः । 'छत्रिणो यान्ती'त्यत्र हि सादृश्यसम्बन्धाभावः, समवायसम्बन्धस्य स्थितत्वात् । अतोऽत्र शुद्धा लक्षणा । मानवानां समवाये (समुदाये) केचन छत्रधारिणः केचन च छत्ररहिताः, एतान् सर्वान् लक्ष्यीकृत्य 'छत्रिणो यान्ती'ति प्रयोगः । ततः (समवायसम्बन्धात्) छत्रिणां बाहुल्यं लक्ष्यते ।

आरोपेण सहिता 'सारोपा' । प्रकृते आरोपविषये (उपमेये) अप्रकृतस्याऽऽरोपमाणस्य (उपमानस्य) आरोपे 'सारोपा' । इयञ्च रूपकालङ्कारस्य बीजभूता । यथा—'मुखमेवेन्दु'रित्यत्र आरोपविषयो मुखं (लक्ष्यं), आरोप्यमाण इन्दुः (लक्षकः) । द्वयोरप्युपादानादत्र 'सारोपा' लक्षणा । इन्दुनिष्ठानामाह्लादकत्वादिगुणानां सादृश्यमत्र सम्बन्धः । अत्रोऽत्र 'गौणीसारोपालक्षणा' । अत्र इन्दुतादात्म्यापन्नं मुखं लक्ष्यते ।

अध्यवसानेन सहिता 'साध्यवसाना' । आरोप्यमाणेन (लक्षकेन उपमानेन वा) निगीर्णस्य आरोपविषयस्य (उपमेयस्य लक्ष्यस्य वा) अन्यतादात्म्यप्रतीति-

कर्त्री 'साध्यवसाना' लक्षणा। इयमतिशयोक्त्यलङ्कारस्य ('रूपकातिशयोक्ति'-संज्ञकस्य) बीजभूता।

यथा—'इन्दुरेव' इति गौणीसाध्यवसानालक्षणाया उदाहरणम्। सादृश्य-सम्बन्धाद् 'गौणीत्व'मत्र। 'इन्दु'पदेनाऽऽरोप्यमाणेन 'मुख'पदस्य निगरणं, पुनश्च मुखतादात्म्यप्रतीतिः, ततः 'साध्यवसानात्व'मत्र।

'सारोपा' लक्षणायामारोपविषयस्याप्युपादानं, साध्यवसानालक्षणायान्तु आरोपविषयस्याऽनुपादानमिति पार्थक्यं तयोः।

एवञ्च गौणी शुद्धा चेति द्विविधा लक्षणा। द्विविधाप्येषा सारोपा साध्यवसाना चेति द्विधा भूत्वा चतुर्धा भवति। उक्तञ्च—

'सारोपाध्यवसानाख्ये गौणशुद्धे पृथक् पृथक्।
गौणं सारोपमुद्दिष्टमिन्दुर्मुखमितीदृशम्॥ १॥
गौणं साध्यवसानं स्यादिन्दुरेवेदमीदृशम्।
शुद्धं सारोपमुद्दिष्टमायुर्घृतमितीदृशम्॥ २॥
शुद्धं साध्यवसानं स्यादायुरेवेदमीदृशम्।' इति।

३ प्रश्नः—'सौन्दर्येणैष कन्दर्पः, सा च मूर्तिमती रतिः' इत्यत्र कौ लक्षणा-भेदौ ? इति सप्रपञ्चं निगदत।

उत्तरम्—'सौन्दर्येणैष कन्दर्प' इत्यत्र 'सहेतुका'नाम्नी लक्षणा। हेतुना सहिता सहेतुके'ति विग्रहः। एवञ्च लक्ष्यार्थबोधे निमित्तस्योपादाने 'सहेतुका' लक्षणेति फलितम्। उदाहरणेऽस्मिन् 'सौन्दर्येणे'ति निमित्तस्योपादानम्। लक्ष्यो-ऽर्थश्च 'कन्दर्पसदृशः सुन्दरः' इत्येवरूपः।

'सा च मूर्त्तिमती रति'रित्यत्र तु 'निर्हेतुका'नाम्नी लक्षणा।

'नास्ति हेतुर्यस्यां सा निर्हेतुके'ति विग्रहः। लक्ष्यार्थबोधे निमित्तस्यानुपादाने 'निर्हेतुका' लक्षणा। उदाहरणेऽस्मिन् सौन्दर्यरूपनिमित्तस्याऽनुपादानम्। एव-ञ्चात्र 'रतिसदृशी सुन्दरी'ति लक्ष्योऽर्थः प्रतीयते।

सहेतुकायाः निर्हेतुकायाश्च लक्षणायाः जयदेवेनेत्थं लक्षणे लक्षिते—

'तथा सहेतुरतथाभेदभिन्ना च कुत्रचित्' इति।

अथ शब्दार्थनिरूपणम्—'तथा'=उक्तभेदवत्। 'अतथा'=हेतुशून्या।

[एतत्सदृशा अपि प्रश्नाः सम्भवन्ति। यथा—कुन्ता विशन्ति, गङ्गायां घोषो निवसतीति चे'त्यत्र स्थितौ लक्षणाभेदौ सोपपत्तिकं निर्वचनीयौ' इति। एतेषा-मुत्तराणि परिशिष्टप्रदर्शितविषयानुक्रमणिकासाहाय्येनैव लेख्यानि।]

—:०:—

दशमो मयूखः

१ प्रश्नः—सभेदं लक्ष्यसङ्क्रमनपूर्वकमभिधावृत्तिलक्षणं विवेचनीयम् ।

उत्तरम्—'अभिधीयते=साक्षात्सङ्केतितमर्थं बोधविषयीक्रियतेऽनयेत्यभिधा' इति 'अभिधा'शब्दव्युत्पत्तिः तल्लक्षणन्तु जयदेवेनेत्थमभाणि—

'धर्मं कञ्चित् पुरस्कृत्य प्रायः शब्दः प्रवर्तते ।
यथाऽर्थं स्पष्टमाचष्टे शब्दस्ता'मभिधां' विदुः ।। १ ।।' इति ।

एवञ्च सङ्केतितम् अर्थं बोधयन्ती शब्दस्य वृत्त्यन्तरानन्तरिता वृत्ति-'रभिधा'नाम्नी वर्तते इति फलितम् । 'आद्या शक्ति,' 'मुख्या' चेति नामान्तरे । अभिधाविषयभूतोऽर्थश्च—'अभिधेयः', 'वाच्यः', 'मुख्यः', 'आद्यः', 'शक्य'-श्चेत्युच्यते । अर्थानुसारेण शब्दश्च—'अभिधायकः', 'वाचकः', 'मुख्यः', 'आद्यः', 'शक्त'श्चेति सम्बोध्यते ।

संकेतितार्थग्राहकाणीमानि—

'शक्तिग्रहं व्याकरणोपमानकोशाप्तवाक्याद् व्यवहारतश्च ।
वाक्यस्य शेषाद्विवृतेर्वदन्ति सान्निध्यतः सिद्धपदस्य वृद्धाः ।। १ ।।'

उदाह्रियते—एकेन 'गामानये'त्युक्ते, अपरस्मिश्च 'गवानयन'कर्मणि प्रवृत्ते सति, बालोऽस्य वाक्यस्य 'सास्नादिमत्पिडानयन'मर्थं इति प्रथमं जानाति । अनन्तरञ्च 'गां बधान, अश्वमानय' इति पदानामावापोद्वापाभ्यां (ग्रहण-त्यागाभ्यां) गोपदस्य 'सास्नादिमत्पिण्ड'मित्यर्थः, 'आनयन'पदस्य च 'आहा-रण'मर्थः इति सङ्केतमवधारयति ।

'धर्मस्य षड्विधत्वेन अभिधाऽपि षड्विधा वर्तते । षड्धर्मास्तु—१. जातिः, २. गुणः, ३. क्रिया, ४. वस्तुयोगः, ५. संज्ञा, ६. निर्देशश्चेति ।

यथा—'गौ'रित्यत्र गोत्वजातिः, 'नील' इत्यत्र नीलत्वगुणः, 'पाचक' इत्यत्र पाकक्रिया, 'दण्डी'त्यत्र 'दण्ड'रूपवस्तुयोगः, 'डित्थ' इत्यत्र 'डित्थत्व' संज्ञा, 'कंस' इत्यत्र कंकारसकाररूपवर्णनिर्देशः ।

जयदेवोऽप्याहात्र विषये—

'जात्या गुणेन क्रियया वस्तुयोगेन संज्ञया ।
निर्देशेन तथा प्राहुः षड्विधामभिधां बुधाः ।।
'गौर्नीलः पाचको दण्डी डित्थः कंस इति क्रमात् ।। १ ।।' इति ।

२. प्रश्नः—'न योगादेरायतनं न सङ्केतनिकेतनम् ।
वृत्त्या निर्देशशब्दोऽयं मुख्यया स्वाभिधेयया ॥ १ ॥'

कारिकेयं व्याख्येया ।

उत्तरम्—धर्मस्य जात्यादिरूपतया षड्विधत्वेन वाचकः शब्दोऽपि षड्विधः । तत्र षष्ठो 'निर्देश'शब्दः वर्णानां स्वपरत्वे जात्यादिभिन्नविषयः । यथा—'कंसं हिनस्ति कंसारिर्नरं कञ्च समाश्रितम्' इत्यत्र 'कंसारिः कं संहिनस्ती'ति प्रश्ने 'सङ्कारमाश्रितकङ्कारम् (अर्थात् कंसं) इति 'कङ्कारसमाश्रितं नरम्' (अर्थात् नरकासुरं) इति चोत्तरद्वयम् ।

तस्यैव 'निर्देश'शब्दस्य यौगिकत्वादि सङ्केतविषयत्वञ्च निरस्यति—

'न योगादे'रिति । 'निर्देशशब्दो योगादेरायतनं न, सङ्केतनिकेतनं न, अयं स्वाभिधेयया मुख्यया वृत्त्या (प्रतीयते)' इति वाक्ययोजना ।

प्रतिपदव्याख्या चेयम्—'निर्देशशब्दः'—निर्देशे = स्वरूपे शब्दः = कंसादिः, 'योगादेः' = व्युत्पत्त्यादेः, (आदिपदात् शुद्धयोग–यौगिकमूलयौगिक–सम्भिन्नयोग–योगरूढशब्दानां सङ्ग्रहः ।) 'आयतनं न' = स्थानं न । 'संकेतनिकेतनं न' = डित्थादिसंज्ञाशब्दवत् सङ्केतस्य स्थानं न । 'अयं' = निर्देशशब्दः, 'स्वाभिधेयया–स्वं = वर्णद्वयादिकमेव, अभिधेयं यस्यां सा तयेति सप्तमी बहुव्रीहिः । 'मुख्यया' = अभिधाख्यया, 'वृत्त्या' = व्यापारेण 'प्रतीयते' इति शेषः ।

तात्पर्यञ्चेदम्—निर्देशशब्दः जातिगुणक्रियावस्तुयोगवाचकशब्दवत् शुद्धयौगिकमूलयोगादेर्विषयो नास्ति, तथैव संज्ञावाचकडित्थादिशब्दवत् सङ्केतविषयोऽप्ययं न वर्तते । अतो वर्णानां स्वपरत्वे जात्यादिभिन्नविषयो निर्देशशब्दः ।

अत्रायं विशेषः—'महाभाष्य'कारपतञ्जलिमते 'चतुष्टयी शब्दानां प्रवृत्तिः' जात्या गुणेन क्रियया संज्ञया च । पीयूषवर्षमते तु सा षड्विधा—वस्तुयोगेन, निर्देशेन च ।

वेदभूव्योमनयनमिते वैक्रमवत्सरे ।
चन्द्रालोकस्याभिनवं रहस्यं पूर्णतामगात् ॥

—: ० :—

परिशिष्टम्

विषयानुक्रमणिका

प्रथमे वाग्विचारः—

विषयः	कारिका	विवरणम्
मङ्गलाचरणम्	'उच्चैरस्यति०'	वाग्देवतास्तवनमिदम् । अत्र श्लेषसङ्कीर्णा उपमा । कविनिष्ठवाग्देवताविषयकरतिभावोऽत्र ।
स्वग्रन्थप्रकर्षः	'हुं हो ! चिन्मय–'	अत्र 'चिन्मयचित्तचन्द्रमणयः' इति पदे 'रूपकम्' 'विचारवीचिनिचये'ति शब्दे परम्परितरूपकम्, द्वयोः संसृष्टिः ।
काव्यप्रयोजनम्	'युक्त्याऽऽस्वाद्य–'	धनम्, उपदेशः, यशश्चेति त्रीणि काव्याध्ययनप्रयोजनानि ।
स्वगर्वत्यागः	'तं पूर्वाचार्य—'	अत्र पूर्वाचार्याणां सूर्यस्थानीयत्वेन तदुक्तेर्ज्योतिः स्थानीयत्वमिति रूपकम् ।
स्वग्रन्थोपादेयता	'नाशङ्कनीय–'	अत्र जीर्णोक्तिपरिष्कारकत्वेन स्वोक्तेरुपादेयतेति भावः । उपमालङ्कारः ।
काव्यकारणम्	'प्रतिभैव०'	काव्ये प्रधानं कारणं प्रतिभा, तत्सहकारिकारणभूतौ च श्रुताभ्यासौ इति तदर्थः ।
काव्यलक्षणम्	'निर्दोषा लक्षणवती०'	अत्र 'अनेकवृत्ति'रिति पदेन त्रिप्रकारका वृत्तिर्बोध्या । तथा च—अभिधा–लक्षणा–व्यञ्जनात्मकतया त्रिविधा शब्दव्यापाररूपा प्रथमा वृत्तिः । कैशिकी–सात्वती–आरभटी–भारतीमयत्वेन चतुर्विधा दृश्यकाव्योपयुक्ता द्वितीया वृत्तिः । मधुरा-प्रौढा परुषा ललिता-भद्रारूपैः पञ्चविधा श्रव्यकाव्योपयुक्ता तृतीया वृत्तिः ।

विषयः	कारिका	विवरणम्
मम्मटमत-खण्डनम्	'अङ्गीकरोति०'	'निरलङ्कारौ शब्दार्थौ काव्यम्' इति काव्यप्रकाशे मम्मटभट्टमतम्, तस्यैव खण्डनमिदम् । अलङ्कारादियुक्तत्वमेव काव्यत्वमिति भावः ।
त्रिविधः शब्दः	'विभक्त्युत्पत्तये०'	सुप-तिङ्प्रत्ययोत्पत्तियोगः साधुः शास्त्रीयः शब्दः । स च रूढः, यौगिकः, योगरूढश्चेति त्रिविधः ।
रूढस्य त्रैविध्यम्	'अव्यक्तयोग–'	केवलसमुदायशक्त्या अर्थबोधकत्वं रूढत्वम् । स च अव्यक्तयोग–निर्योग–योगाभासैस्त्रिधा परिणमति । उत्तरार्धमुदाहरणम् ।
यौगिकस्य त्रैविध्यम्	'शुद्धतन्मूल—'	केवलावयशक्त्याऽर्थबोधकत्वं यौगिकत्वम् । स च त्रिविधः । शुद्धयौगिकः, यौगिकमूलयौगिकः, सम्भिन्नयौगिकश्चेति । उत्तरार्धमुदाहरणम् ।
योगरूढस्य त्रैविध्यम्	'तन्मिश्रोऽन्योऽन्य–'	समुदायाऽवयवोभयशक्त्याऽर्थबोधकत्वं योगरूढत्वम् । स च त्रिप्रकारकः । सामान्यार्थे विशेषार्थबोधकः, विशेषार्थे सामान्यार्थबोधकः, सामान्यविशेषोभयार्थबोधकश्चेति । उत्तरार्धमुदाहरणम् ।
योगरूढस्य फलम्	'क्षीरनीरधि–'	योगरूढस्य फलं 'क्षीरनीरधि'रित्यादिपदव्यवहारः ।
पदवाक्ययोः खण्डवाक्यस्य च लक्षणानि	'विभक्त्यन्तं पदं०'	सुबन्तं तिङन्तं च पदम् । पदसमूहो वाक्यम् । निराकङ्क्षार्थबोधकमिति यावत् । साकाङ्क्षार्थबोधकपदसमूहः खण्डवाक्यम् ।
उक्तलक्षणापवादः खण्ड-वाक्यं	'वाक्यं च'	पदैक्येऽपि वाक्यत्वं खण्डवाक्यत्वञ्च न हीयते । यथा–'धूमवत्वा'दिति वाक्यम् । 'देव !' इति खण्डवाक्यम् ।
प्रबन्धलक्षणम्	'वाक्यान्येकार्थं०'	एकार्थतात्पर्यको वाक्यसमूहः प्रबन्ध इति तात्पर्यम् ।

द्वितीये दोषनिरूपणम्—

विषयः	कारिका	विवरणम्
दोषस्वरूपम्	'स्याच्चेतो०'	रमणीयताविघातकत्वं दोषत्वम् । स च शब्ददोषः, अर्थदोषश्चेति द्विविधः । सामान्येन द्विविधोऽप्ययं पदवृत्ति-पदांशवृत्ति—वाक्यवृत्ति—वाक्यांशवृत्ति—प्रबन्धवृत्ति—अर्थवृत्ति—रसवृत्तितया सप्तधा । अत्र ग्रन्थे रसदोषाः न प्रतिपादिताः ।
श्रुतिकटुः	'श्रवेच्छ्रुतिकटुः०'	परुषवर्णतया श्रुतिदुःखावहत्वं श्रुतिकटुत्वम् । अस्यैव 'दुःश्रवत्व'मिति नामान्तरम् । 'भवेच्छ्रुतिकटु'रित्येवोदाहरणम् ।
च्युतसंस्कृतिः	'संविद्रते०'	व्याकरणविरुद्धत्वं च्युतसंस्कृतित्वम् । 'संविद्रते' इति आत्मनेपदप्रयोगः अकर्मकत्व एव भवति । अत्र तु सकर्मकत्वे प्रयोगोऽस्य ।
अप्रयुक्तम्	'अप्रयुक्तं दैव०'	तथाप्रसिद्धावपि कविभिरनादृतत्वमप्रयुक्तत्वम् । यथा दैवतशब्दस्य कोशादौ पुंल्लिङ्गतया प्रतिपादनेऽपि कविभिः तस्य पुंल्लिङ्गे प्रयोगो न क्रियते । तत्प्रयोगेऽयं दोषः ।
असमर्थम्	'असमर्थन्तु०'	विवक्षितार्थे परिपठितेऽपि तदर्थप्रतिपादनाशक्तत्वमसमर्थत्वम् । यथा—'स हन्ती'त्यत्र हन्धातोः गमनार्थे प्रयुक्तत्वाद्दोषः ।
निहतार्थम्	'निहतार्थं लोहि०'	उभयार्थस्य शब्दस्याप्रसिद्धेऽर्थे प्रयोगे निहतार्थत्वम् । यथा—'शोणित'शब्दस्य अरुणत्वरुधिरत्वोभयार्थवाचकत्वेऽपि अप्रसिद्धेऽरुणेऽर्थे प्रयोगः ।
अनुचितार्थम्	'व्यनक्त्यनु०'	वर्णनीयवैरूप्यबोधकत्वमनुचितार्थत्वम् । यथा—'इयमद्भुते'त्यत्र 'वानरी'ति वैरूप्यबोधकम् ।
निरर्थकम्	'निरर्थकं तु ही०'	पादपूरणमात्रफलकत्वं निरर्थकत्वम् । यथा 'तु ही'त्यादेः पादपूरणार्थं प्रयोगः ।

विषयः	कारिका	विवरणम्
अवाचकम्	'अर्थे विदध०'	यदुपसर्गसंसर्गादिना यो धातुर्यदर्थवाचकः तस्मिंस्तस्य तं विनैव प्रयुक्तत्वमवाचकत्वम्। यथा—'धत्ते नभस्तल'मित्यत्र करोत्यर्थे 'विधत्ते' इति अपेक्षिते 'धत्ते' इति प्रयोगः।
अश्लीलम्	'अश्लीलं त्रिविधं०'	व्रीडाजुगुप्साऽमङ्गलान्यतरव्यञ्जकत्वमश्लीलत्वम्। यथा—'आह्लादसाधन'मित्यत्र साधन-वायु—नाश—शब्दाः क्रमेण व्रीडा—जुगुप्सा—अमङ्गलव्यञ्जकाः।
सन्दिग्धम्	'स्याद्द्व्यर्थमिह०'	अनेकार्थबोधकपदस्वरूपसन्देहजनकत्वं सन्दिग्धत्वम्। यथा—'नद्या'मित्यत्र 'नदीदेशे गच्छन्ति' उत 'स्वर्गं न गच्छन्ति' इति अर्थद्वयबोधात्सन्देहः।
अप्रतीतम्	'स्यादप्रतीतं०'	कोशाद्यप्रसिद्धत्वे सति शास्त्रप्रसिद्धत्वमप्रतीतत्वम्। यथा—सांख्यशास्त्रप्रसिद्धः 'वीतानुमान'शब्दप्रयोगः।
शिथिलम्	'शिथिलं शयने०'	पदानां शिथिलबन्धत्वं शिथिलत्वम्। यथा—'शयने लिल्ये' इत्यत्र शिथिलानि पदानि।
ग्राम्यत्वम्	'मस्तपिष्टकटी—'	अविदग्धमात्रचमत्कारजनकपदप्रयोगे ग्राम्यत्वम्। यथा—मस्तादयः शब्दाः क्रमेण उन्मत्त-चूर्णान्न-नितम्ब-मृत्पिण्ड-कपोलेषु ग्राम्याः।
नेयार्थम्	'नेयार्थं लक्षणा०'	रूढिप्रयोजनाभावादशक्तिकृतं लक्ष्यार्थप्रकाशनं नेयार्थत्वम्। यथा—'हिमांशो'रित्यादौ धिक्कारयामि कादिपदेषु लक्षणाया आधिक्यं स्फुटमेव।
क्लिष्टम्	'क्लिष्टमर्थो०'	अर्थप्रतीतेर्व्यवहितत्वम् क्लिष्टत्वम्। यथा—'हरिप्रिये'त्यत्र 'गङ्गाप्रवाहसदृशं निर्मलं ते वचः' इत्यर्थः क्लिष्टः।

विषयः	कारिका	विवरणम्
अविमृष्टविधेयांशः	'अविमृष्टविधेयांशः०'	इतरविशेषणत्वेन निर्दिष्टविधेयकत्वमविमृष्टविधेयांशत्वम् । यथा—'विशन्ती'त्यादौ 'विशिखप्राये'ति विधेयस्य समासे स्थितत्वाद्विधेयत्वासम्भवः ।
विरुद्धमतिकृत्	'अपराधीन०'	वर्णनविरुद्धार्थप्रतीतिजनकत्वं विरुद्धमतिकृत्त्वम् । यथा–'अपराधीन'पदस्य प्रकरणवशात् 'स्वतन्त्र' इत्यर्थः, 'अपरस्याधीनः परतन्त्रः' इति तु विरुद्धार्थप्रतीतिः ।
न्यसङ्गतम्	'अन्यसंगत०'	अभिमतार्थस्यान्यविशेषणत्वप्रत्यायकत्वमन्यसङ्गतत्वम् । यथा–'उत्तुङ्गे'त्यादौ 'उत्तुङ्ग'शब्दार्थस्य 'पयोधर'पदेन सम्बन्धोऽभिमतः, स च समासे सति 'हार'पदेन सम्बद्धः ।
तिकूलाक्षरं	'रसाद्यनुचिते'	रसप्रतिकूलवर्णत्वं प्रतिकूलाक्षरत्वम् । यथा–'न मामङ्गदे'त्यत्र वीररसप्रतिकूलता शिथिलवर्णरचना वर्तते ।
हतलुप्तविसर्गे	'यस्मिन्नुपहतो०'	यत्र विसर्गा ओत्वं प्राप्नुवन्ति तत्र उपहतविसर्गत्वम् । यथा—'उपहतो लुप्तो' इत्यत्र विसर्गौ ओत्वं प्राप्तौ, विसर्गलोपे लुप्तविसर्गत्वम् । यथा—'विसर्ग' इत्यत्र विसर्गस्य लोपः ।
सन्धिविसन्धी	'कुसन्धिः पटवा०'	सन्धौ कष्टत्वं कुसन्धित्वम् । यथा–'पटवागच्छे'त्यत्र 'पटो ! आगच्छे'ति स्थितौ क्लिष्टा सन्धिः । सन्धिविश्लेषे विसन्धित्वम् । यथा—'नृपती इमौ' इत्यत्र प्रकृतिभावोत्पन्नः शास्त्रीयः सन्धिविश्लेषः ।
तवृत्तम्	'हतवृत्तमनुक्तौ'	छन्दोलक्षणानुसरणेऽपि अश्राव्यछन्दोदोषत्वं हतवृत्तत्वम् । यथा–'विशाललोचने' ! इत्यत्र 'पश्याम्बर'मिति स्थले यतिभङ्गजन्या अश्राव्यता ।

विषयः	कारिका	विवरणम्
न्यूनम्	'न्यूनं त्वत्खड्ग'	अपेक्षितपदानुपादानत्वं न्यूनत्वम्। यथा—'त्वत्खड्गसम्भूते'त्यत्र यशसः पुष्पत्वे कथिते पदानुपादानं दोषः।
अधिकम्	'अधिकं भवतः०'	अनपेक्षितपदोपादाने अधिकम्। यथा 'भवतः शत्रू'नित्यादौ 'असि'शब्दे 'लता'-रोपोऽधिकः।
कथितम्	'कथितं पुनरुक्ता०'	कथनपौनरुक्त्ये कथितत्वम्। यथा—'श्यामाब्जे'त्यत्र 'श्याम'पदं पुनरुक्तम्।
विकृतम्	'विकृतं दूरविकृतै०'	धातुप्रत्ययादिविकारोत्पन्नशब्दवत्त्वं विकृतत्वम्। यथा—'ऐयरु'रित्यत्र अनेकप्रत्ययादिनिष्पन्नता। ऐयरुः प्रापुरित्यर्थः।
पतत्प्रकर्षम्	'पतत्प्रकर्षहीना०'	अनुप्रासप्रकर्षत्यागे पतत्प्रकर्षत्वम्। यथा 'गम्भीरारम्भे'त्यादौ क्रमात्मकारानुप्रासस्य प्रकर्षो हीयते।
समाप्तपुनरात्तम्	'समाप्तपुनरात्तं'	वाक्यसमाप्तावपि पुनः पदविशेषोपादाने समाप्तपुनरात्तत्वम्। 'एष पीयूषभाजन'मित्यादौ हि 'उदेती'ति वाक्यसमाप्तावपि 'अम्बुधिः बान्धवः' इति पदोपादानम्।
अर्धान्तरपदा-पेक्षि०	'अर्धान्तरपदा-पेक्षि०'	द्वितीयार्धघटकपदार्थहेतुकप्रथमार्धवाक्यत्वमर्धान्तरपदापेक्षित्वम्। समग्रपद्यमुदाहरणम्। अत्र पूर्वार्धे 'सस्मित'मित्यन्तविशेषणे 'मोघारम्भ'मित्युत्तरार्धपठितस्यापेक्षणात्।
अभवन्मतयोगः	'अभन्म-तयोः०'	अभीष्टान्वयानिर्वाहे अभवन्मतयोगः 'येन बद्ध' इत्युदाहरणम्। अत्र 'येने'ति पदस्य 'रामस्ये'ति पदेन सहान्वयोऽभिमतः स च नोपपन्नः।
अस्थानस्थ-समासम्	'अस्थानस्थ-समासं०'	अनभिमतस्थानस्थितसमासत्वमस्थानस्थसमासत्वम्। यथा—पूर्वार्धे वीररसानुकूलः समासोऽपेक्षितोऽपि न कृतः, 'विद्वज्जनमनोरम'मितिस्थाने च समासः कृतः।

[वि]षयः	कारिका	विवरणम्
[स]ङ्कीर्णम्	'मिथः पृथग्वाक्य०'	वाक्यान्तरपदवाक्यानां वाक्यान्तरप्रवेशे सङ्कीर्णत्वम् । यथा—'वक्त्रेणे'ति । अत्र 'वक्त्र''चन्द्र'पदे पूर्वोत्तरवाक्ययोः प्रविष्टे इति पदसङ्कीर्णताऽत्र । 'ब्रह्माण्ड'मित्यादौ 'आकर्णये'ति वाक्यान्तरप्रवेशाद्वाक्यसङ्कीर्णता ।
[भ]ग्नप्रक्रमम्	'भग्नप्रक्रममारब्ध०'	आकाङ्क्षितप्रकारकस्यार्थस्यानुक्तिर्भग्नप्रक्रमत्वम् । यथा—'अक्रमः' इत्यत्र उद्देश्यस्थाने 'अनाराध्ये'ति पदं प्रतिनिर्देश्यस्थाने च 'पूज्यन्ते' इति पदमिति धातुभेदेन भग्नप्रक्रमत्वम् ।
[अ]मतार्थान्तरम्	'अमतार्थान्तरं०'	विरुद्धरसव्यञ्जकपदोपादानत्वममतार्थान्तरत्वम् । यथा—'त्यक्तहारमुर' इत्यत्र 'कृत्वाशोकेने'ति स्थले 'अशोकेने'ति पदच्छेदेन प्रकृतकरुणविरोधी शृङ्गारोऽभिव्यज्यते ।
[अ]पुष्टार्थः	'अपुष्टार्थो०'	मुख्यानुपकारकविशेषणोपादानत्वमपुष्टार्थत्वम् । उत्तरार्धे 'खञ्जनत्विष' इति विशेषणं 'कान्ताकटाक्षा' इति विशेष्यपदस्योपकारं न करोति ।
[क]ष्टः	'कष्टः स्पष्टा०'	विलम्बेनार्थबोधकत्वं कष्टत्वम् । 'वाच्यसन्निभः' इति लक्ष्यम् । 'वाच्यसदृशः' इति प्रतीतेः विलम्बेनैवात्र 'वाचि वचने न सत् सम्यक् विभाति' इति विशेषोऽर्थो नोपलक्ष्यते ।
व्याहतम्	'व्याहतश्चेद्विरो०'	पूर्वापरार्थविरुद्धत्वं व्याहतत्वम् । 'सहस्रपत्र'मित्यत्र वक्त्रस्योपमेयस्य सहस्रपत्रमुपमानं प्रदर्श्यापि 'केनोपमीयते' इति कथनेन पूर्वार्थस्य परार्थेनासङ्गतिः ।
[पु]नरुक्तत्वम्	'कुतस्तस्योपमा०'	अर्थप्रतीतत्वेपि पुनस्तत्प्रतिपादनं पुनरुक्तत्वम् । उदाहरणेऽस्मिन् 'कुत' इति पदेन

विषयः	कारिका	विवरणम्
		उपमानभूतचन्द्रवैयर्थ्ये सिद्धावपि पुनः 'पुनरुक्तः सुधाकर' इति वाक्योपादाने पुनरुक्तत्वम् ।
दुष्क्रम-ग्राम्य सन्दिग्धाः	'दुष्क्रमग्राम्य०'	लोकशास्त्रक्रमविपरीतत्वं दुष्क्रमत्वम् । 'त्वद्भक्त' इत्यत्र लोकप्रतिकूलतया नरकगमनस्य प्रथमोपादानमनुचितम्' । वैदग्ध्यरहितवचनत्वं ग्राम्यत्वम् । 'एकं मे' इत्यत्र अविदग्धपुरुषवाक्यार्थतया ग्राम्यत्वम् । वक्तृतात्पर्ये निश्चयाभावत्वं सन्दिग्धत्वम् । 'ब्रूत कि'मित्यत्र प्रकरणाद्यभावाच्छान्तशृङ्गारयोः सन्देहः ।
अनौचित्यम्	'अनौचित्यं'	अयोग्यसम्बन्धत्वमनौचित्यम् । 'कीर्तिलता'मित्युदाहरणे 'तरङ्गयती'ति कीर्तिलतायां सम्बन्धोऽनुचितः ।
विरुद्धम्	'प्रसिद्धया०'	लोकशास्त्रादिप्रसिद्धिविरुद्धत्वं विरुद्धत्वम् । 'न्यस्तेय'मित्यत्र प्रतापस्य धवलवर्णत्वं कविसमयप्रसिद्धिविपरीतम् । 'केतकी शेखरे' इत्यत्र केतकीपुष्पं शम्भुपूजायां वर्जितमिति तद्वर्णनं पुराणविरुद्धम् ।
सामान्यपरिवृत्तिः	'सामान्यपरि०'	सामान्यपदस्थाने विशेषपदोपादानं सामान्यपरिवृत्तिः । 'कुण्डलच्छविविग्रहे'त्यत्र कुण्डलस्य कनकालङ्कारविशेषस्योक्तिः सामान्यकनकस्थाने ।
विशेषपरिवृत्तिः	'विशेषपरि०'	विशेषस्थले सामान्यपदग्रहणे विशेषपरिवृत्तिः । 'वनितेत्यादौ' प्रेयसी'ति विशेषपदमपहाय 'वनिते'ति सामान्यपदोपादानम् ।
सहचराचारु-विरुद्धान्योन्य-सङ्गती	'द्वौ स्तः सह०'	अचारुसाहचर्यं सहचराचारुत्वम् । 'ध्वाङ्क्षा' इत्यत्र 'ध्वाङ्क्षा' इति अचारुसाहचर्यम् ।

विषयः	कारिका	विवरणम्
		विवक्षितार्थविपरीतसङ्गतित्वं विरुद्धान्योन्यसङ्गतित्वम् । 'सरोजनेत्रे'त्यत्र सरोजानामिन्दुसम्बन्धो विरुद्धः । 'पालयिष्यती'त्यत्र गोत्रपुरन्दरयोः सम्बन्धोऽनुचितः ।
दोषाश्रयाः	'पदे तदंशे०'	दोषाश्रयाः पञ्च । पदं सुप्तिङन्तरूपम्, तदंशः प्रकृतिप्रत्ययरूपः, वाक्यम्, वाक्यांशः; समासरूपः, खण्डवाक्यरूपश्च; वाक्यकदम्बकं प्रबन्धरूपञ्चेति ।
दोषाङ्कुशः	'दोषमापतितं०'	येन दोषा गुणाः निर्दोषाश्च भवन्ति स दोषाङ्कुशः । सः त्रिधा ।
तस्य त्रैविध्यम्	'दोषे गुणत्वं०'	दोषे गुणत्वं, दोषे निर्दोषत्वं, दोषे उपादेयतेति त्रिप्रकारकः सः ।
प्रथमस्योदाहरणम्	'मुखं चन्द्रश्रियं०	लक्षणसङ्गतिस्तु कारिकायामेव ।
द्वितीयस्योदाहरणम्	'तव दुग्धाब्धि०'	कारिकायामेव लक्षणसङ्गतिः ।
तृतीयस्योदाहरगम्	'दधार गौरी ०'	तथैव लक्षणसङ्गतिः कारिकायाम् ।

तृतीये लक्षणनिरूपणम्—

विषयः	कारिका	विवरणम्
अक्षरसंहृतिः	'अल्पाक्षरा०'	अल्पाक्षराणां बह्वर्थप्रत्यायकत्वेऽक्षरसंहृतिः । 'उषाकान्तेने'त्यत्र शूरस्य 'उषाकान्तेनानुगतः' इति विशेषणेन उषापरिणयवृत्तं श्रीकृष्णपौरुषञ्च स्मारितमिति बह्वर्थप्रत्यायकत्वाल्लक्षणसंगतिः ।
शोभा	'शोभा ख्यातोऽपि०'	गुणवर्णनेन प्रसिद्धदोषतिरस्कारकत्वं शोभात्वम् । 'मुधे'त्यत्र हि भगवत्पूजालक्षणगुणवत्वेन संसारदोषतिरस्कारः ।
अभिमानः	'अभिमानो०'	कल्पितार्थप्रतिषेधकयुक्त्युपादानमभिमानः । 'इन्दुर्यदी'त्यत्र वियोगिन्या तर्कितचन्द्रः चन्द्रत्ववानपि तीव्रत्वेन निषिद्धः, ततः सूर्यत्वेन तर्कितः सूर्यो रात्रिसम्बन्धेन निषिद्धः ।

विषयः	कारिका	विवरणम्
हेतुः	'हेतुस्त्यक्त्वा०'	अनेकपक्षतिरस्कारपूर्वकसयुक्तिकैकपक्षोपन्यासो हेतुः। 'नेन्दु'रित्यत्र चन्द्रसूर्यार्थत्यागेन सागरोत्थिततया दाहकत्वेन च वडवाग्निनिर्णयः।
प्रतिषेधः	'प्रतिषेधः०'	प्रसिद्धकारणतिरस्कारपूर्वकाप्रसिद्धकारणादरत्वं प्रतिषेधत्वम्। 'न युद्धेने'त्यत्र वीरपतने प्रसिद्धं कारणं युद्धमनादृत्य 'स्पन्देन भ्रुवो'रिति कारणान्तरमादृतम्।
निरुक्तम्	'निरुक्तं स्यान्नि०'	सत्यासत्यतया नाम्नः व्युत्पत्तिप्रकटनं निरुक्तत्वम्। 'ईदृशै'रित्यर्थः चन्द्रपक्षे 'दोषाकरो' रात्रिकरः, राजपक्षेः, च दोषाणामाकरः इति नामनिर्वचनम्।
मिथ्याध्यवसायः	'स्यान्मिथ्या०'	साध्यसाधनयोरसत्यत्वे मिथ्याध्यवसायः। 'चन्द्रांशुसूत्रे'त्यत्र करणभूत'चन्द्रांशुसूत्रग्रथन' कार्यभूत 'नभःपुष्पस्रजो'र्मिथ्यात्वम्।
सिद्धिः	'सिद्धिः ख्यातेषु०'	सादृश्यसिध्यर्थं प्रसिद्धसाहचर्येण कथनं सिद्धिः। 'युवामेवेहे'त्यत्र जलधिना सह नृपो वर्णितः।
युक्तिः	'युक्तिर्विशेष०'	विचित्रधर्मसम्बन्धकथनेन चमत्काराधायकविशेषार्थसाधनं युक्तित्वम्। 'नवस्त्व'मित्यत्र उपमेये नृपे स्वर्णवृष्टिप्रतिपादनं नीरदापेक्षया नवनीरदरूपविशेषसिद्धयर्थम्।
कार्यम्	'कार्यं फलो०'	व्यापाराद्वस्तुनो वा कार्यकथने कार्यम्। 'असावुदेती'त्यत्र चन्द्रस्य स्वतः उदयव्यापारेण च मानभङ्गफलजनकत्वम्।
उपसंहारः	'इत्यादि लक्षणं०'	यथा कनकतेजस्विललाटत्वादीनि राजचिह्नानि भूयांसि वर्तन्ते, तथैव भूयांसि अक्षरसंहतिप्रभृतीनि काव्यलक्षणानि वर्तन्ते। काव्यत्वप्रत्यायकत्वं लक्षणत्वम्।

चतुर्थे गुणनिरूपणम्—

विषयः	कारिका	विवरणम्
श्लेषः	'श्लेषो विघट०'	श्लेषो द्विविधः। असम्भविनोऽर्थस्य सोपपत्तिकं सम्भवित्वेन प्रतिपादने अर्थश्लेषः। 'उल्लसत्तनुता'मित्यत्र मानवत्त्या असम्भावितस्याऽऽलिङ्गनस्य 'भीतये'ति हेतूक्तिपुरस्सरं संभावितत्ववर्णनम्। बहूनां पदानामेकपदवद्भासने शब्दश्लेषः। 'नीतेऽनन्ते 'श्रियाश्लिष्ट'मित्येकपदवद्भासमानानां वर्णानां साजात्यम्।
प्रसादः	'यस्मादन्तः०'	अर्थवैमल्यात्मकत्वं प्रसादत्वम्। उदाहरणमेतदेव। अर्थस्य स्फुटत्वात्।
समता	'समताऽल्प०'	दीर्घसमासाभावे प्रक्रान्तप्रकृतिप्रत्ययाविपर्यासेनार्थस्याविसंवादे वा समता। 'श्यामले'त्यत्र द्विविधा समता, दीर्घसमासाभावात् वर्णसाम्याच्च।
समाधिः	'समाधिरर्थं०'	रसव्यञ्जकचमत्कृतिपूर्णार्थप्रतिपादने समाधिः। उदाहरणन्त्विदमेव, अर्थस्य चमत्कृतिपूर्णत्वात्।
माधुर्यम्	'माधुर्यं पुन०'	चमत्कृतिजनकशब्दपौनरुक्त्ये माधुर्यम्। 'वयस्ये'त्यादौ 'पश्य पश्ये'ति पौनरुक्त्ये चमत्कृतिप्रतीतिः।
ओजः	'ओजः स्यात्प्रौढि०'	अर्थनिष्ठमोजः अनाश्रयस्याश्रयत्वेन संक्षेपेण वर्णने शाब्दः ओजः। यथा—'रिपुं हत्वे'त्यत्र द्विविधोऽप्योजः, अनाश्रयस्य खड्गस्य रिपुहननकर्तृत्वाश्रयरूपेण वर्णनात्संक्षेपोक्तेश्च।
सौकुमार्यम्	'सौकुमार्यमपारुष्यं०'	अमङ्गलपदत्यागेन तत्पर्यायवाचिशब्दप्रयोगात्परुषाक्षराभावे सौकुमार्यम्। 'स कथे'—

विषयः	कारिका	विवरणम्
		त्यादौ 'अग्नौ प्रविश्य मृत' इत्यर्थस्य पर्यायेण कथनात् ।
उदारता	'उदारता तु०'	विदग्जनप्रयुक्तत्वमुदारता । न चाऽसौ ग्राम्यत्वदोषाभावरूपा । 'मानं मुञ्चे'त्यत्र 'विलोकये'तिस्थाने 'लोचनान्तमुञ्चये'ति प्रयोगे वैदग्ध्यम् ।
कान्त्यर्थव्यक्त्यो-रन्तर्भावः	'शृङ्गारे च०'	कान्तिर्दीप्तरसत्वं, स च शृङ्गाररसान्तर्गतः अर्थव्यक्तिरर्थस्फुटत्वम्, स च प्रसादगुणान्तर्गतः । एतौ वामनमतेन ।
गुणाऽलङ्कारभेदः	'अमी दश'	यथा पुरुषे शौर्यादयो गुणाः आत्मधर्मास्तथैव काव्ये श्लेषादयो गुणाः (अष्टौ ग्रन्थकृन्मतेन, दश वामनमतेन) रसधर्माः । यथा स्त्रीणां शरीरे तिलककटककुण्डलादयोऽलङ्कारास्तथैव काव्यस्य शब्दार्थशरीरे अनुप्रासोपमादयोऽलङ्काराः । इति तयोर्भेदः ।
व्यासनिर्वाहादेर-गुणत्वम्	'वैचित्र्यलक्षणं०'	व्यास-निर्वाह-प्रौढि-औचिती-सङ्ग्रह-शास्त्रान्तररहस्योक्ति दिक्प्रदर्शितमात्रकाः सप्त न गुणाः, अपि तु वैचित्र्यज्ञापकाः ।

पञ्चमेऽलङ्कारनिरूपणम्—

विषयः	कारिका	विवरणम्
अलङ्कारस्वरूपम्	'शब्दार्थयोः०'	शब्दार्थशरीरवृत्तित्वे सति काव्यशोभाजनकत्वमलङ्कारत्वम् । स च द्विविधः । शब्दपरिवृत्त्यसहत्वे शब्दालङ्कारः । शब्दपरिवृत्तिसहत्वेऽर्थालङ्कारः ।
छेकानुप्रासः	'स्वरव्यञ्जन०'	'वर्णसाम्यमनुप्रासः' इति अनुप्राससामान्यस्वरूपम् । तत्र व्यञ्जनसाम्ये छेकानुप्रासः । अत्र तु व्यञ्जनसाम्यं सकृत् । इदमेवोदाहरणम्, 'मन्दोहदोहदे'त्यत्र स्वरव्यञ्जनावृत्तेः ।
वृत्त्यनुप्रासः	'आवृत्तवर्ण०'	'अनेकवारं स्वरव्यञ्जनावृत्तौ वृत्त्यनुप्रासः । 'अमन्दे'त्यत्र 'द'कारस्यासकृदावृत्तिः ।

विषयः	कारिका	विवरणम्
लाटानुप्रासः	'लाटानुप्रासभू०'	अभिप्रायभेदेन शब्दपौनरुक्त्ये लाटानुप्रासः। 'यत्र स्या'दित्यत्र 'जितं जित'मिति पुनरुच्चारणम्। अत्र द्वितीय'जित'पदस्य 'सफल'रूपो लक्ष्योऽर्थः।
स्फुटानुप्रासः	'श्लोकस्यार्धे०'	श्लोकार्धे श्लोकचरणे वा वर्णावृत्तौ स्फुटानुप्रासः। उत्तरार्धे 'मता मतिमतामि'त्यत्र 'सता सतामि'त्यत्र च वर्णावृत्तिः।
अर्थानुप्रासः	'उपमेयोपमा०'	उपमेयोपमानभूतपदयोर्वर्णावृत्तौ अर्थानुप्रासः। यथोत्तरार्धे 'वन्दनं चन्दनमेवे'ति वाक्ये वर्णावृत्तिः।
पुनरुक्तप्रतीकाशम्	'पुनरुक्तप्रती०'	भिन्नार्थकत्वे सति एकार्थपदवदाभासनत्वं पुनरुक्तप्रतीकाशत्वम्। 'अंशुकान्त'मित्यत्र 'अंशुकान्तमम्बरान्तमि'ति पदयोरर्थभेदेऽपि एकार्थवद्भासः।
यमकम्	'आवृत्तवर्णस्तबकं०'	भिन्नार्थकवर्णसमूहावृत्तिर्यमकम्। अत्रैव लक्षणश्लोके 'स्तबकं स्तबक'मिति 'मा धुर्यमाधुर्ये'ति च वर्णसमूहावृत्तेर्यमकम्।
चित्रम्	'काव्यवित्प्रवरै०'	सन्निवेशविशेषेण न्यास्ताः वर्णाः यत्र भङ्गाद्याकारं प्रकटयन्ति चित्रमलङ्कारः। इदमेवोदाहरणम्। खड्गबन्धोऽत्र।
उपमा	'उपमा यत्र०'	उपमानोपमेययोः सादृश्यप्रतिपादने उपमा। उदाहरणमेतदेव। अत्र 'द्वयो'रिति पदमुपमेयम्। 'स्तनयो'रिति पदमुपमानम्। 'सादृश्यलक्ष्मी'-रितिसाधारणधर्मः। 'इव'-पदमुपमावाचकम्। उपमानोपमेययोः स्तनयोरिव सादृश्यप्रतीतेः पूर्णोपमा।
अनन्वयः	'उपमानोपमेयत्वे०'	एकस्यैव वस्तुनः उपमानोपमेयत्वकल्पने अनन्वयः। 'इन्दुरिन्दु'रिवेत्यत्र एकस्यैवेन्दोरुपमेयत्वोपमानत्वकल्पनादनन्वयः।

विषयः	कारिका	विवरणम्
उपमेयोपमा	'पर्यायेण द्वयोः०'	द्वयोः पर्यायेणोपमानोपमेयत्वकल्पने उपमेयोपमा। उत्तरार्धे धर्मार्थयोर्हि क्रमेणोपमानोपमेयत्वकल्पनम्।
प्रतीपोपमा	'विख्यातस्यो०'	प्रसिद्धोपमानस्योपमेयत्वकल्पने प्रतीपोपमा। 'इन्दुर्मुखमिवे'त्यत्रोपमानतया सर्वत्र प्रसिद्धमिन्दुपदमुपमेयत्वेन कल्पितम्।
ललितोपमा	'उपमाने तु०'	उपमानं यत्र लीलादिपदेन सम्पन्नं, तत्र ललितोपमा। उत्तरार्द्धे 'नीलकमल'पदे लीला; पदालङ्कृतिः तेन लीलामिव लीलामित्यर्थबोधः।
स्तबकोपमा	'अनेकार्थस्य०'	उपमानोपमेययोः विशिष्टयोः सादृश्ये स्तबकोपमा। उत्तरार्द्धे 'वक्तृभृङ्गयोश्चरणतामरसयोश्चोपमानोपमेयभावः।
सम्पूर्णोपमा	'स्यात्सम्पूर्णो०'	यत्रोपमानोपमेययोरेकस्य धर्मस्य वाच्यता तत्र सम्पूर्णोपमा। 'पद्मानीवे'ति लक्ष्ये कमलनेत्रयोरुपमानोपमेययोर्द्वयोरपि वर्ण्यमानत्वम्।
रूपकम्	'यत्रोपमान०'	उपमेये उपमानारोपमात्रे रूपकम्। लक्ष्यमपि इदमेव। 'उपमाने' 'चित्रस्य' 'उपमेये' च 'भित्ते'स्तादात्म्यारोपात्।
सोपाधिरूपकम् (परम्परितम्)	'समानधर्मं०'	यत्रैकारोपो प्रधानारोपं प्रति कारणं तत्र सोपाधिरूपकम्। लक्ष्ये उत्सिक्तादिसमानधर्मसम्बन्धेन राज्ञि पुरन्दरत्वारोपः।
सादृश्यरूपकम् (समस्तवस्तुविषयं साङ्गरूप०)	'पृथक्कथिता सा०'	यत्रारोप्यधर्माणां शब्दोपादनं तत्र सादृश्यरूपकम्। उदाहरणे 'भुजे' भूरुहत्वारोपे कृते तस्याऽङ्गुलिषु पञ्चशाखत्वारोपः।
आभासरूपकम्	स्यादङ्गयष्टि०'	सौन्दर्यानवबोधके आरोपे क्रियमाणे आभासरूपकम्। 'अङ्गयष्टि'रित्यत्र 'अङ्गे' यष्टित्वारोपः न सौन्दर्योत्पादकः अपितु लम्बत्वधर्मद्योतकः।

विषयः	कारिका	विवरणम्
रूपितरूपकम्	'अङ्गयष्टिधनु	आरोपितोपमानोपमेययोस्तादात्म्याध्यवसाये रूपितरूपकम्। 'अङ्गयष्टिधनुर्वल्ली'त्यत्र प्रथममङ्गे यष्टित्वस्य धनुषि च वल्लित्वस्यारोपे क्रियमाणे ततोऽङ्गयष्टौ धनुर्वल्लीत्वारोपः।
परिणामः	'परिणामोऽनयो०	उपमानस्योपमेयात्मकतया क्रियान्वये परिणामः। उत्तरार्धे 'मीन'रूपोपमानस्योत्तररूपोपमेयात्मकतया दानक्रियायामन्वयः।
उल्लेखः	'बहुभिर्बहुधो०'	एकस्मिन्ननेककर्तृकोऽनेकरूपारोप उल्लेखः। 'स्त्रीभि'रित्यत्र स्त्री—प्रिय—शत्रुभिः प्रेक्षणेषु क्रमेण कामत्व—चन्द्रत्व—कालत्वारोपः।
अपह्नुतिः	'अतथ्यमारो०'	तथ्यधर्मनिषेधपूर्वकोऽतथ्यधर्मारोपोऽपह्नुतिः। यथा—'नाय'मिति। अत्र सुधांशौ सुधांशुत्वधर्मनिषेधपूर्वकः व्योमगङ्गासरोरुहत्वारोपः।
पर्यस्तापह्नुतिः	'पर्यस्तापह्नुतिः०'	धर्मिणि धर्मनिषेधपूर्वकं तद्धर्मस्य धर्म्यन्तरे आरोपः पर्यस्तापह्नुतिः। उत्तरार्धे सुधांशौ सुधांशुत्वधर्मं निषिध्य तस्य सुधांशुत्वस्य प्रेयसीमुखे आरोपः।
भ्रान्तापह्नुतिः	'भ्रान्तापह्नुति०'	अतथ्यभ्रान्तिनिवारणपूर्वकतथ्यनिश्चये भ्रान्तापह्नुतिः। लक्ष्ये ज्वरभ्रान्तिमपहाय कामोद्भवरूपतथ्यनिश्चयः।
छेकापह्नुतिः	'छेकापह्नुति०'	परभीतिहेतुकस्वतथ्यगोपने छेकापह्नुतिः। 'प्रजल्पन्नि'ति नूपुरस्य पादसंलग्नत्वभ्रममुत्पाद्य स्वकान्तपादपतनवृत्तान्तनिह्नवोऽत्र।
कैतवापह्नुतिः	'कैतवापह्नुति०'	व्याजादिपदोपादनपुरस्सरं तथ्यधर्मनिषेधः कैतवापह्नुतिः। 'निर्यान्ती'त्यत्र कैतवपदेन 'कान्ताकटाक्षाः न, किन्तु स्मरनाराचा' इत्यर्थप्रतीतिः।

विषयः	कारिका	विवरणम्
उत्प्रेक्षा	'उत्प्रेक्षोन्नीयते०'	प्रकृतस्योत्कटकोटिकज्ञानतादत्म्येन सम्भावनमुत्प्रेक्षा। 'त्वन्मुखश्री'त्यादौ चन्द्रपद्मयोः स्वाभाविके वैरे सिद्धे कान्तामुखश्रीलाभास्याऽफलस्यापि फलत्वेन सम्भावनम्।
गूढोत्प्रेक्षा	'इवादिकपदाभावे०'	उत्प्रेक्षावाचक-इवादिपदान्यपहाय उत्प्रेक्षा गूढोत्प्रेक्षा। 'त्वत्कीर्ति'रित्यत्र असन्नपि कीर्तेः श्रमः श्रमहेतुत्वेन सम्भावितः, वाचकपदश्च नोपात्तम्।
स्मृति-भ्रान्ति-सन्देहाः	'स्यात्स्मृति'	सदृशवस्तुस्मरणे स्मृतिमान्। 'पङ्कज'मित्यत्र मुखसदृशपङ्कजदर्शनेन कान्तामुखस्मरणम्। अतथ्यज्ञाने सति भ्रान्तिमान्। 'अय'मित्यत्र कान्तामुखे पङ्कजभ्रमः। उभयकोटिकज्ञाने ससन्देहः। 'पङ्कजं वे'त्यत्र कान्तावदने पङ्कजसुधांशुरूपकोटिद्वयावलम्बिज्ञानम्।
मीलितम्	'मीलितं बहुसादृश्या०'	उपमेयवस्तुनः पृथक् यत्रोपमानं सादृश्यान्न प्रतीयते तत्र मीलितम्। यथा 'रस' इति। अत्र चरणेनोपमेयेन लाक्षारसः उपमानभूतः अरुणिमसाम्यात्तिरोधयते।
सामान्यम्	'सामान्यं यदि०'	उपमानोपमेययोः सादृश्याद् भेदाऽप्रतीतौ सामान्यम्। 'पद्माकरे'त्यत्र 'पद्मसुभ्रूखयो'र्भेदाप्रतीतिः, अतः सामान्यम्।
उन्मीलितम्	'हेतोः कुतोऽपि०'	उपमानादुपमेयोत्कर्षज्ञानाधायकहेतुविशेषकथनमुन्मीलितम्। 'लक्षितानी'त्यत्र चन्द्रोदयो 'मुखपद्मयो'र्भेदज्ञाने कारणम्। पद्मानां चन्द्रोदये सङ्कोचवत्वात्।
अनुमानम्	'अनुमानं च०'	यत्र कार्येण कारणज्ञानं तत्राऽनुमानम्। 'अस्ती'त्यत्र 'स्मितोदय' कार्यद्वारा नायिकाहृदयस्थो भावो निमित्तमनुमीयते।

विषयः	कारिका	विवरणम्
अर्थापत्तिः	'अर्थापत्तिः स्वयं०"	एकपदार्थसिद्ध्याऽपरपदार्थसिद्धौ अर्थापत्तिः 'स जित' इत्यत्र चन्द्रे विजिते कमलविजयः स्वयं सिद्धः इत्यर्थापत्ति ।
काव्यलिङ्गम्	'स्यात्काव्यलिङ्गं०'	कारणद्वारा कार्यसमर्थने काव्यलिङ्गम् । 'जितोऽसी'यत्र 'मच्चित्तेऽस्ति त्रिलोचनः' इति वाक्यार्थो हेतुः कन्दर्पजये ।
परिकरः	'अलङ्कारः परिकरः०'	विशेषणस्याभिप्रागर्भत्वे परिकरेः । 'सुधांश्वि'त्यत्र 'सुधांशुकलितोत्तंसः' इति शिव-विशेषणं तापनिवारकशैत्याभिप्रायगर्भम् ।
परिकराङ्कुरः	'साभिप्राये०'	विशेष्यस्य तात्पर्यद्योतकत्वे परिकराङ्कुरः। 'चतुर्णा'मित्यत्र 'चतुर्भुज' इति विशेष्यमर्थ-चतुष्टयदानसौकर्याभिप्रायगर्भम् ।
अक्रमातिशयोक्तिः	'अक्रमातिशयो–'	कार्यकारणयोरेककालावच्छेदेन वर्णने अक्र-मातिशयोक्तिः। उत्तरार्धे शरारोपणरूपकार-णस्य शत्रुमरणरूपकार्यस्य च यौगपद्येन वर्णनम् ।
अत्यन्तातिशयोक्तिः	'अत्यन्तातिशयो०'	कार्यस्य प्रथमं कारणस्य च तदनन्तरं वर्णने अत्यन्तातिशयोक्तिः। लक्ष्ये अनुनयः कारणं मानभङ्गश्च कार्यम् । तयोः पौर्वापर्य-विपर्ययवर्णनादत्यन्तातिशयोक्तिः ।
चपलातिशयोक्तिः	'चापलातिशयो०'	कारणकथनमात्रेणैव कार्योद्भववर्णने चप-लातिशयोक्तिः। 'यामी'त्यत्र गमनरूप-कारणकथनेनैव 'ऊर्मिका वलयरूपेण परिण-ते'ति कार्यकथनाल्लक्षणसंगतिः ।
सम्बन्धातिशयोक्तिः	'सम्बन्धातिश०'	असम्बन्धे सम्बन्धवर्णने सम्बन्धाति-शयोक्तिः। उदाहरणे विधुमण्डलस्य सौधा-ग्रासम्बन्धेऽपि तत्सम्बन्धवर्णनम् ।
भेदकातिशयोक्तिः	'भेदकातिशयो०'	भेदाभावे सति भेदकल्पने भेदकातिश-योक्तिः। यथा—'अहो' इति। अत्र लोक-

विषयः	कारिका	विवरणम्
		प्रसिद्धलावण्याभेदेपि 'अन्यैवे'ति तद्भेदकथनाद्भेदकातिशयोक्तिः ।
रूपकातिशयोक्तिः	'रूपकातिशयो०'	उपमाने उपमेयनिगरणे सति रूपकातिशयोक्तिः । उदाहरति—'पश्ये'ति । अत्र नीलोत्पलद्वन्द्वे उपमाने नेत्रद्वयोपमेयस्य, तथा शरे उपमाने कटाक्षस्योपमेयस्य निगरणम् ।
प्रौढोक्तिः	'प्रौढोक्तिस्तद०'	तत्र असमर्थस्य तत्र सामर्थ्यवर्णने प्रौढोक्तिः । 'कलिन्दजे'त्यत्र कलिन्दजातटोत्पन्नस्य वृक्षस्य नैल्यजननाऽसमर्थत्वेऽपि तत्समर्थत्वकल्पनम् ।
प्रहर्षणम्	'वाञ्छितादधि०'	अनायासेन इच्छाविषयाधिकप्रातिबोधकशब्दसमूहे प्रहर्षणम् । 'दीप'मित्यत्रालोकाभिलाषिणः सूर्योदयरूपाधिकप्राप्तिः ।
विषादनम्	'इष्यमाण०'	इच्छाप्रतिकूलप्राप्तिवर्णने विषादनम् । उत्तरार्धे आलोकाभिलाषिणः जनस्यान्धकारप्राप्तिः ।
तुल्ययोगिता	'क्रियादिभि—'	प्रस्तुतानामप्रस्तुतानां वा धर्मैक्ये तुल्ययोगिता । 'सङ्कुचन्ती'त्यत्र सरोज-स्वैरिणीवदनयोः प्रस्ततयोः सङ्कोचक्रियायामन्वयः ।
दीपकम्	'प्रस्तुताप्रस्तुव०'	अप्रस्तुतप्रस्तुतानामेकधर्माभिसम्बन्धे दीपकम् । 'मेधामि'त्यत्र राज्ञः प्रस्तुतस्य बुधचन्द्रयोश्चाप्रस्तुतयोधारणक्रियान्वयः ।
आवृत्तिदीपकम्	'आवृत्ते दीपकपदे०'	क्रियावाचके क्रियादिरूपेऽर्थे वा आवृत्ती आवृत्तिदीपकम् । 'दीप्त्ये'त्यत्र 'भाती'ति क्रियावाचकस्य आवृत्तिः ।

विषयः	कारिका	विवरणम्
प्रतिवस्तूपमा	'वाक्ययोरर्थं०'	एक धर्मस्य विभिन्नपदेनोपादाने प्रतिवस्तूपमा। 'तापेने'त्यत्र 'भ्राजते' इति एकस्य धर्मस्य पृथगुपादानम्।
दृष्टान्तः	'चेद्बिम्बप्रति०'	बिम्बप्रतिबिम्बभावे दृष्टान्तः। बिम्बप्रतिबिम्बभावश्च वस्तुतो भिन्नयोरप्युपमानोपमेयधर्मयोः परस्परसादृश्यादभिन्नयोः पृथगुपादानम्। लक्ष्यमपीदमेव। पूर्वोत्तरवाक्यार्थयोरुपमानोपमेयभूतयोर्बिम्बप्रतिबिम्बभाववत्त्वात्। यथा वा—'दृष्टान्तश्चे'दिति। अत्र बिम्बप्रतिबिम्बभावः।
निदर्शना	'वाक्यार्थयोः०'	सदृशवाक्यद्वयस्यैक्यस्थापने निदर्शना। 'या दातु'रित्यत्र यत्तद्भ्यां पूर्वोत्तरवाक्ययोरभेदारोपः।
व्यतिरेकः	'व्यतिरेको०'	उपमानादुपमेयाधिक्यवर्णने व्यतिरेकः। 'शैला' इत्यत्र उपमेयभूतेषु सज्जनेषु कोमलत्वधर्मः अधिकः।
सहोक्तिः	'सहोक्तिः सह०'	चमत्कृतिपूर्णे सहभावे सहोक्तिः। 'दिगन्त'मित्यत्र कीर्तेः प्रत्यर्थिनाश्च सहभावः।
विनोक्तिः	'विनोक्तिश्चेद्०'	अभावोक्त्या प्रस्तुते न्यूनत्ववर्णने विनोक्तिः। 'विद्ये'त्यत्र विनयाभावाद्विद्यायाः अवद्यत्वं सूचितम्।
समासोक्तिः	'समासोक्तिः-परि०'	प्रस्तुते अप्रस्तुतवृत्तान्तसमारोपे समासोक्तिः। 'अय'मित्यत्र चन्द्रोदयरूपात्प्रस्तुतवृत्तान्ताद्विशेषणवशाज्जारकृतपरस्त्रीचुम्बनरूपोऽप्रस्तुतवृत्तान्तः प्रतीयते।
खण्डश्लेषः	'खण्डश्लेषः-पदा०'	पदानामर्थभेदे खण्डश्लेषः। 'उच्छल'दित्यत्र पदभङ्गाभावेऽपि कीलालपदेन जलरुधिरयोर्वाहिनीपदेन च नदीसेनयोः प्रतीतिः।

विषयः	कारिका	विवरणम्
भङ्गश्लेषः	'भङ्गश्लेषः पद०'	पदसमुदायस्य भङ्गपूर्वकमर्थवैविध्ये भङ्गश्लेषः। 'अजरामरते'ति पदे 'अज–राम–रता' 'अजर'–'अमरता' इति पदभङ्ग–द्वारा अर्थद्वयप्रतीतिः।
अर्थश्लेषः	'अर्थश्लेषोऽर्थ०'	पर्यायशब्दपरिवर्तनेऽपि अनेकार्थतायामर्थ-श्लेषः। 'कुटिला' इत्यत्र 'कटाक्षकुन्तलानां' विशेषणानि अर्थद्वयगर्भाणि।
अप्रस्तुत-प्रशंसा	'अप्रस्तुतप्रशंसा-स्या०'	अप्रस्तुते प्रस्तुतवृत्तान्तप्रतीतौ अप्रस्तुत-प्रशंसा। तत्र च कार्यकारणभावसामान्यविशेष-भावौ सम्बन्धौ। सारूप्यादपि सा। 'कमलै'-रित्यत्र धनिककथावृत्तान्तस्य प्रस्तुतस्य प्रतीतिः, यद्वा 'नेत्रादिभिरियं शोभते' इति प्रस्तुतार्थप्रतीतिः। 'अप्यम्बुधे'रित्युदाहरणान्तरे 'व्यवसायिनां न किमपि दुष्कर'मिति प्रस्तुतार्थप्रतीतिः।
अर्थान्तर-न्यासः	'भवेदर्थान्तर-न्यासो०'	सामान्यविशेषयोः प्रस्तुतयोरर्थयोर्विशेष-सामान्याभ्यां समर्थने अर्थान्तरन्यासः। 'हनू-मानि'त्यत्र 'दुष्करं किं महात्मना'मिति सामा-न्येन 'हनूमानब्धिमतरदि'ति विशेषसमर्थनम्।
विकस्वरः	'यस्मिन्विशेष०'	विशेषसमर्थितसामान्यस्य पुनर्विशेषेण समर्थने विकस्वरः। 'स ने'त्यत्र 'स न जिग्ये' इति विशेषस्य 'महान्तो हि दुर्धर्षा' इति सामान्येन समर्थने पुनस्तस्य 'क्ष्माधरा इवे'ति विशेषेण समर्थनम्।
पर्यायोक्तिः	'कार्याद्यैः प्रस्तुतैः०'	व्यङ्ग्यार्थस्य प्रकारान्तरे कार्यादिद्वारे-णाभिधानं पर्यायोक्तिः। 'तृणानी'त्यत्र तृणो-त्पादमकार्यकथनेन विपक्षनृपवधरूपं कारणं प्रतीयते।

विषयः	कारिका	विवरणम्
व्याजस्तुतिः	'उक्तिर्व्याज-स्तुति०'	निन्दया स्तुति प्रतीतौ, स्तुत्या च निन्दा-प्रतीतौ व्याजस्तुतिः। 'कस्ते' इत्यत्र निन्दया पापिजनमुक्तिदानसामर्थ्यरूपा स्तुतिर्व्यज्यते ।
आक्षेपः	'आक्षेपस्तु प्रयुक्तस्य०'	विचारपूर्वकं स्वकथनस्यैव निषेध आ-क्षेपः 'चन्द्रे'त्यत्र स्वोक्तस्य चन्द्रदर्शनविधे-र्निषेधः प्रियामुखसौन्दर्योत्कर्षबोधनार्थं कृतः ।
गूढाक्षेपः	'गूढाक्षेपो विधौ०'	विधेः स्पष्टत्वे निषेधस्य चास्पष्टत्वे गूढा-क्षेपः। 'हरे'त्यत्र विधेः स्पष्टत्वं भरणरूप-निषेधस्यास्पष्टत्वञ्च ।
विरोधः	'विरोधोऽनुप-पत्ति०'	द्रव्यगुणक्रियाजातीनां सम्बन्धाऽनुपपत्तौ विरोधः। 'अमन्दे'त्यत्र अमन्दता गुणः, चन्दनत्वं जातिः, चन्दनं द्रव्यम्, स्पन्दः क्रिया, तेषां दाहकत्वे विरोधः ।
विरोधाभासः	'श्लेषादिभि-र्विरोध०'	श्लेषेण विरोधपरिहारसहित विरोधज्ञाने विरोधाभासः। उत्तरार्धे 'अप्यन्धकारिणे'-त्यत्रान्धकारवतां जगत्प्रकाशनं विरुद्धम्, अन्धकरिपुत्वेन शिवभाने तत्परिहारः ।
असम्भवः	'असम्भवोऽर्थ०'	निष्पन्नस्यार्थस्यासम्भावितत्ववर्णने अस-म्भवः। 'को वेदे'त्यत्र भूतस्य गोवर्धनोद्धरणस्या-सम्भावित्ववर्णनम् ।
विभावना	'विभावना विना०'	कार्योत्पत्तिः कारणाभावे सत्यपि विभा-वना। 'पश्ये'त्यत्र लाक्षारससंसर्गरूप-कारणाभावेऽपि रञ्जनरूपकार्योत्पत्तिकथनम् ।
विशेषोक्तिः	'विशेषोक्तिरनु०'	कारणसत्वेपि कार्यानुत्पत्तिर्विशेषोक्तिः। 'नमन्तमपी'त्यत्र नमनरूपकारणसत्वेऽपि लङ्घनरूपकार्यानुत्पत्तिः ।
असङ्गतिः	'आख्याते भिन्न०'	कार्यकारणयोः स्थानभेदे असङ्गतिः। 'त्वद्भक्तानां'मित्यत्र अङ्गनमनरूपकारणस्याधि-करणभूताः भक्ताः, भङ्गरूपस्य च कार्य-

विषयः	कारिका	विवरणम्
		स्याधिकरणं भवक्लमः, इति भिन्नदेशत्वं तयोर्हेतुहेतुमतोः ।
विषमम्	'विषमं यद्यनौचि०'	अननुरूपयोः सम्बन्धकथनं विषमम् । 'क्वाती'त्यत्र सर्पचन्दनवृक्षयोरननुरूपः सम्बन्धो वर्णितः ।
समम्	'सममौचित्यतो०'	अनुरूपयोः सम्बन्धवर्णने समम् । अनु-रूप'मित्यत्र 'हारकुचयोः' शोभासम्बन्ध उचितः ।
विचित्रम्	'विचित्रं चेत्प्रय०'	विपरीतहेतुप्रयत्नवर्णने विचित्रम् । 'नमन्ती'त्यत्र समुन्नत्यर्थं नमनप्रयत्नः विचित्र एव ।
अधिकम्	'अधिकं वोध्य०'	आधारापेक्षया आधेयविशालत्ववर्णने अधिकम् । 'यये'त्यत्राधारभूत वागपेक्षया-ऽऽधेयभूतगुणानामाधिक्यवर्णनम् ।
अन्योन्यम्	'अन्योन्यं नाम०'	प्रसिद्धपरस्परोपकारवर्णने अन्योन्यम् । 'त्रियामे'त्यत्र त्रियामाशशिनोः परस्परशोभा-जनकत्वम् ।
विशेषः	'विशेषः ख्यात०'	प्रसिद्धाधाररराहित्यपूर्वकमाधेयवर्णनं वि-शेषः । 'गतेऽपी'त्यत्र प्रसिद्धाधारभूतसूर्यं विना आधेयभूततदीयकिरणवर्णनम् ।
व्याघातः	'स्याद्व्याघातो०'	अन्यजनकत्वेन लोकप्रसिद्धस्य तद्विरुद्ध-कार्यजनकत्ववर्णने व्याघातः । 'यैरि'त्यत्र प्रीतीजनकत्वेन प्रसिद्धानां कुसुमानां कुसु-मायुधकृततद्विपरीतमारणक्रियावर्णनम् ।
कारणमाला	'गुम्फः कारण-माला०'	परम्परम्प्रति पूर्वपूर्वस्य कारणैः, पूर्वं-पूर्वंप्रति परपरस्य कारणैश्च रचनाविशेषः कारणमाला । 'नयेने'त्यत्र नयश्रीत्यागानां पूर्वपूर्वस्य परंपरं प्रति कारणानां वर्णनम् ।

विषयः	कारिका	विवरणम्
एकावली	'गृहीतमुक्तरी-त्यर्थं०'	पूर्वं पूर्वं प्रति परं परं विशेषणत्वेन विशेष्यत्वेन च स्थापितेऽपोहिते च एकावली। 'नेत्रे' इत्यत्र पूर्वं नेत्रयोर्विशेषणत्वेन कर्णयोर्ग्रहणम्, पुनश्चाग्रे तयोः कर्णयोर्विशेषणत्वेन त्यागो विशेष्यत्वेन च ग्रहणम्।
मालादीपकम्	'दीपकैकावली-योगा०'	एकक्रियायोगेन पूर्वंपूर्वस्योत्तरोत्तरगुणत्वे मालादीपकम्। 'स्मरेणे'त्यत्र स्थितिकरणरूपक्रियायोगेन पूर्वं हृदयस्य मदनाधारतया ग्रहणम्, ततश्च नायकाधारत्ववर्णनेन हृदयाधारत्वत्यागः।
सारः	'सारो नामपदो-त्कर्षः०'	यथोत्तरमुत्कर्षवर्णने सारः। 'सार'मित्यत्र सारस्वत-काव्य-शिवस्तवानां यथोत्तरमुत्कर्षवर्णनम्।
उदारसारः	'उदारसारश्चे-द्भाति०'	उत्कर्षाधायकोत्तरोत्तरगुणस्य भिन्नस्यापि अभिन्नत्वेन वर्णने उदारसारः। 'मधुर'मित्यत्र 'मधुर' शब्दमहिम्ना मधु—पीयूष—कविवचनानां माधुर्यं रसनाग्राह्यत्वेन भिन्नमपि अभिन्नत्वेनोत्तरोत्तरोत्कर्षप्रतिपादनपूर्वकं वर्णितम्।
यथासङ्ख्यम्	'यथासङ्ख्यं-द्विधा०'	कारकाणां क्रियाणां वा क्रमशः कारकेषु क्रियासु वा सम्बन्धे यथासङ्ख्यम्। 'शत्रु'-मित्यत्र शत्रु—मित्र—द्विषत्पक्षाणां कारकाणां क्रमेण विजय—रञ्जन—तर्जनक्रियासु सम्बन्धः।
पर्यायः	'पर्यायश्चेदनेकत्र०'	एकस्यानेकसंश्रयतायां पर्यायः। 'पद्म'-मित्यत्र 'कामिनीवदनोपमायाः' पद्मे चन्द्रे च संश्रयः।
परिवृत्तिः	'परिवृत्तिर्विनि०'	न्यूनेनाधिकग्रहणे अधिकेन च न्यूनग्रहणे परिवृत्तिः। 'जग्राहे'त्यत्र शरेण (न्यूनेन) कटाक्षाणां (अधिकानां) ग्रहणम्।

विषयः	कारिका	विवरणम्
परिसङ्ख्या	'परिसङ्ख्या-निषि०'	एकत्राभावकथनपूर्वकमन्यत्र वस्तुनियन्त्रणे परिसंख्या । 'स्नेहक्षय' इत्यत्र स्नेहक्षयस्य नतभ्रूस्वान्तेषु निषेधपूर्वकं प्रदीपेषु व्यवस्थानम् ।
विकल्पः	'विकल्पस्तुल्य०'	चमत्कृतिपूर्णस्तुल्यबलविरोधो विकल्पः । 'कान्ताचित्ते' इत्यत्र मय्यनुरागस्य स्वाधरेऽन्यनायिकादत्तरक्तिम्नश्च युगपन्निषेधोक्तिः ।
समुच्चयः	'भूयसामेकसम्बन्ध०'	क्रियाणां गुणानां कारकाणां वा सम्बन्धे समुच्चयः । 'नश्यन्ती'त्यत्र नाश—दर्शन—भ्रंश-क्रियाणां योगः ।
समाधिः	'समाधि कार्यं०'	कार्यसाधककारणसत्त्वेऽपि कारणान्तरकथने समाधिः । 'उत्कण्ठिता'मित्यत्र प्रियाभिसरणकार्यसाधकोत्कण्ठारूपकारणसत्त्वेऽपि सूर्यास्तगमनरूपकारणान्तरकथनम् ।
प्रत्यनीकम्	'प्रत्यनीकं-बलवतः०'	शत्रुपराभवाऽसमर्थेन शत्रुसम्बद्धपराक्रमवर्णने प्रत्यनीकम् । 'जैत्रे'त्यत्र नेत्रविजयाऽसमर्थाभ्यामुत्पलाभ्यां नेत्रसम्बन्धिकर्णौ तिरस्कृतौ ।
प्रतीपम्	'प्रतीपमुपमानस्य०'	उपमेयापेक्षयोपमानन्यूनत्ववर्णने प्रतीपम् । 'दृष्टञ्चेदि'त्यत्रोपमेयभूतवदनादुपमानभूतपद्मचन्द्रयोः 'किमि'ति काकुना तिरस्कारवर्णनम् ।
उल्लासः	'उल्लासोऽन्य-महिम्ना०'	अन्यगुणेन अन्यत्र दोषवर्णनमुल्लासः । 'तदभाग्य'मित्यत्र सज्जनस्य माहात्म्यगुणेन धनस्य तदनाश्रयणदोषः ।
तद्गुणः	'तद्गुणः स्वगुण०'	स्वकीयगुणत्यागेनान्यनिष्ठगुणसम्बन्धकथने तद्गुणः । 'पद्मरागारुण'मित्यत्र नासामौक्तिके श्वेतत्वत्यागेनाधरोष्ठगुणसम्बधेन पद्मरागत्ववर्णनम् ।

विषयः	कारिका	विवरणम्
पूर्वरूपता १	'पुनः स्वगुणसम्प्रा०'	अन्यगुणसम्बन्धकथनपूर्वकं पुनः स्वगुणसम्बन्धकथने पूर्वरूपता प्रथमा। 'हरकण्ठांशिव'त्यत्र हरकण्ठांशुसम्बन्धिश्यामगुणसम्बन्धपूर्वकं श्वैत्यगुणकथनम्।
पूर्वरूपता २	'यद्वस्तुनोऽन्यथा०'	वस्तुनाशकथनपूर्वकं वस्त्वन्तरजन्यतत्कार्यकथनं पूर्वरूपता द्वितीया। 'दीप' इत्यत्र दीपविनाशकथनपूर्वकं काञ्चीरत्नजन्यप्रकाशकार्यकथनाल्लक्षणसङ्गतिः।
अतद्गुणः	'सङ्गतान्यगुणा०'	सम्बन्धेऽपि सम्बन्धिगुणाग्रहणकथने अतद्गुणः। 'विशन्नपी'त्यत्र चन्द्रस्य रविसम्बन्धेऽपि तदीयौष्ण्याग्रहणवर्णनम्।
अनुगुणः	'प्राक्सिद्धस्वगुणो०'	पूर्वस्थितस्यैव स्वकीयगुणस्यान्यसामीप्यादुत्कर्षवर्णने अनुगुणः। 'कर्णोत्पलानी'त्यत्र कर्णावतंसीकृतनीलोत्पलानां कटाक्षसान्निध्यात्तदतिशयवर्णनम्।
अवज्ञा	'अवज्ञा वर्ण्यते०'	अन्यगुणदोषाभ्यामन्यत्र गुणदोषयोरनारोपे अवज्ञा। 'म्लायन्ती'त्यत्र पद्मस्थितम्लानिदोषेण चन्द्रे दोषालाभवर्णनम्।
प्रश्नोत्तरम्	'प्रश्नोत्तरं क्रमे०'	प्रश्नेनोत्तरकल्पने उत्तरेण वा प्रश्नकल्पने प्रश्नोत्तरम्। 'यत्रे'त्यत्र कामयमानाया उत्तरेण 'कुत्र सरित्तरणमार्गः'? इति पान्थप्रश्नकल्पनम्।
पिहितम्	'पिहितं परवृत्तान्त०'	गुप्तपरकीयवृत्तान्तबोधानुकूलचेष्टा पिहितम्। 'प्रिय' इत्यत्र सपत्न्यासक्तनायककृतरात्रिजागरणज्ञानानुकूलनायिकाकृततल्पकल्पवर्णनम्।
व्याजोक्तिः	'व्याजोक्तिः शङ्क०'	परभीत्या शङ्कनीयस्य गुप्तवृत्तान्तस्य कपटेनापह्नवे व्याजोक्तिः। 'सखी'त्यत्र चौर्यरतवृत्तधूलिसम्बन्धत्वेऽपि 'गृहारामे'त्यादिकथनेन गुप्तसुरतगोपनम्।

विषयः	कारिका	विवरणम्
वक्रोक्तिः	'वक्रोक्तिः श्लेष०'	अन्याभिप्राणोक्तस्य वाक्यस्य श्लेषद्वारा काकुद्वारा वा अन्यार्थकतया योजने वक्रोक्तिः । 'मुञ्चे'त्यत्र 'मानं मुञ्च, दिनं प्राप्त'मित्याशयस्य-शब्दश्लेषेण 'नन्दिनं प्राप्तं मा मुञ्चे'त्यभिप्रायान्तरकल्पनम् ।
स्वभावोक्तिः	'स्वभावोक्तिः-स्वभा०'	जात्याद्यनुरूपस्वभावकथने स्वभावोक्तिः । 'कुरङ्गै'रित्यत्र कुरङ्गजातिस्वभावो वर्णितः ।
भाविकम्	'भाविकं भूतभाव्यर्थं०'	भूतार्थानां भविष्यदर्थानां वा वर्तमानवत्साक्षात्कारवर्णने भाविकम् । 'अल'मित्यत्र भूतस्य सुरासुरयुद्धस्य वर्तमानतया वर्णनम् ।
भाविकच्छविः	'देशात्मविप्रकृष्टस्य०'	दूरस्थस्य वस्तुनः सान्निध्यवर्णने भाविकच्छविः । 'त्व'मित्यत्र विरहिण्या हृदये नायकस्य कामाभिन्नत्वेन वर्णनम् ।
उदात्तम्	'उदात्तमृद्धिश्चरितं०'	समृद्धिमद्वस्तुवने महच्चरितस्य अन्योपकारकत्वेन वर्णने उदात्तम् । 'साना'वित्यत्र किरातार्जुनयुद्धस्य हिमालयोपकारकत्वेन वर्णनम् ।
अत्युक्तिः	'अत्युक्तिरद्भुतातथ्य०'	शौर्यौदार्यादीनामाश्चर्यकारकमसत्यवर्णनमत्युक्तिः । 'त्वयी'त्यत्र राज्ञो वदान्यत्वे मिथ्यौदार्योक्तिः ।
मतान्तरे रसवदादयः	'रसभावतदाभास०'	'केचिदाहुर्मनीषिणः' इत्यनेन रसवत्–प्रेय–ऊर्जस्वि–समाहित–भावोदय – भावसन्धि–भावशबलताख्याः सप्त पीयूषवर्षमते न सम्भवन्ति, अलङ्काराणां शब्दार्थवृत्तित्वाद्रसवदादीनाञ्च रसादिवृत्तित्वात् । गुणीभूतव्यङ्ग्यकाव्यात्मका एते ।
शुद्ध्यादीनामलङ्कारत्वम्	'शुद्धिरेकप्रधानत्वं०'	शुद्धिः, एकप्रधानत्वं, संसृष्टिः, सङ्करश्चेत्येते चत्वारोऽलङ्काराः ग्रन्थकृन्मते नैव सम्भवन्ति, यतः एते विन्यासविशेषात्मका एव,

विषयः	कारिका	विवरणम्
		न तु स्वरूपविशेषात्मका अपि च एतेषामलङ्कारत्वस्वीकारे उपमादीनां भेदप्रभेदाः अलङ्कारान्तराणि स्युः ।
मालोपमादीनां नालङ्कारान्तरत्वम्	'माला परम्परा-चैषां०'	मालोपमा-रशनोपमा-मालारूपक-रशनारूपकादीनां नालङ्कारान्तरत्वम् । एतेषां विन्यासविशेषात्मकत्वात्स्वरूपभेदाभावाच्च ।
अलङ्काराणामतिशयोक्त्यलङ्कारे नान्तर्भावः	'शब्दे पदार्थे०'	एते नातिशयोक्तिस्वरूपाः, यतः अतिशयोक्तित्वेन समानेष्वप्युपमाद्यलङ्कारेषु प्रातिस्विकभेदोऽस्त्येव ।

षष्ठे रसादीनां रीतिवृत्त्योश्च निरूपणम्—

विषयः	कारिका	विवरणम्
विभावादिनिरूपणम्	'आलम्बनोद्दीप०'	'रसमात्रे आलम्बनविभावः उद्दीपनविभावश्च कारणम् । अनुभावः कार्यम् । व्यभिचारिभावः सहकारिकारणम् ।
रसस्वरूपम्	'गलद्वेद्यान्तरोभेद्दं०'	विभावानुभावव्यभिचारिभावैः परिणतः रत्यादिस्थायिभावः शृङ्गारादिरससंज्ञकः । स च काव्य–नाटक–भोगेषु सहृदयहृदयाह्लादनहेतुज्ञानस्वरूपः ।
शृङ्गारः	'रत्याख्य स्थायि०'	नायकनायिकारूपालम्बनविभावेन, उद्यानाद्युद्दीपनविभावैः, कटाक्षस्वेदादिभिरनुभावैः, आलस्येर्ष्याजुगुप्सारहितोन्मादहर्षादिभिर्व्यभिचारिभावैः परिणतः रतिस्थायिभावः शृङ्गाररसः । स च सम्भोगः विप्रलम्भश्चेति द्विविधः ।
हास्यः	'हासस्थायी रसो०'	नायकनायिकारूपालम्बनविभावेन, वैरूप्याद्युद्दीपनविभावेन, फुल्लगण्डत्वाद्यनुभावेन, स्थायिभावो हास्यरसः ।
करुणः	'अभीष्टविप्र०'	नायकाद्यालम्बनविभावेन, इष्टवियोगाद्युद्दीपनविभावेन, अश्रुपाताद्यनुभावेन, ग्ला-

विषयः	कारिका	विवरणम्
		न्यादिव्यभिचारिभावेन परिणतः शोकस्थायिभावः करुणरसः ।
रौद्रः	'क्रोधस्थायी रसो०'	शत्रुनायकाद्यालम्बनेन मात्सर्याद्युद्दीपनेन च विभावेन, हस्तनिष्पेषाद्यनुभावेन, सम्मोहादिव्यभिचारिणा च परिणतः क्रोधः रौद्ररसः ।
वीरः	'उत्साहाख्यस्थायि०'	वीररसे उत्साहः स्थायी, नायकाद्यालम्बना, प्रभावाद्युद्दीपनम्, स्थैर्याद्यनुभावः, गर्वादिर्व्यभिचारी ।
भयानकः	'व्याघ्रादिभि०'	अत्रालम्बनविभावः प्राग्वत्, व्याघ्राद्युद्दीपनम्, कम्पितादिरनुभावः मोहादिर्व्यभिचारी, भयश्च स्थायी ।
वीभत्सः	'स्थायी जुगुप्सा०'	जुगुप्सास्थायी, शवाद्यालम्बनम्, अनिष्टेक्षणाद्युद्दीपनम्, निष्ठीवादिरनुभावः, मोहादिर्व्यभिचारी यस्य सः बीभत्सरसः ।
अद्भुतः	'अद्भुतो विस्मयस्था०'	आद्योत्र प्राग्वत्, मायादिरुद्दीपनम्, रोमाञ्चादिकमनुभावः, स्तम्भादिर्व्यभिचारी, विस्मयः स्थायी ।
शान्तः	निर्वेदस्थायिकः०'	अत्राप्यालम्बनं प्राग्वत्, सत्सङ्गादिरुद्दीपनम्, क्षमादिरनुभावः, स्तम्भादिर्व्यभिचारी, निर्वेदश्च स्थायी ।
भावकाव्यम्	'रतिर्देवादि–विषया०'	देवनृपगुरुपुत्रादिविषया रतिः निर्वेदादयस्त्रयस्त्रिंशद्व्यभिचारिभावाश्च 'भाव' पदेनोच्यन्ते ।
व्यभिचारिभावाः	निर्वेदग्लानिशङ्काख्या०'	निर्वेदादयस्त्रयस्त्रिंशद्व्यभिचारिभावाः सहकारिकारणरूपाः । तत्र निर्वेदः शान्तरसस्य स्थायिभावोऽपि ।
रसाभास-भावाभासो	'सर्वसाधारणप्रेम०'	अनुचितनायकनायिकाविषयकरत्यादिवर्णने रसाभासः । एवमेकस्याऽनेकदेवताविषयकरत्यादिवर्णने भावाभासः ।

विषयः	कारिका	विवरणम्
भावशान्त्यादिः	'भावस्य शान्तिरुदयः०'	व्यभिचारिभावाः विनाशे भावशान्तिः। भावस्योद्गमे भावोदयः। भावद्वयस्य कथने भावसन्धिः बहूनां भावानां कथने भावशबलता।
रीतयः	'आचतुष्टय' मासप्त०'	द्वित्रिचतुष्पदानां समासे पाञ्चालिकी, पञ्चषट्सप्तपदानां समासे लाटीया, अष्टमादियथेष्टपदानां समासे गौडीया, सर्वथा समासराहित्ये वैदर्भीति चतस्रो रीतयः। तत्र शृङ्गारे वैदर्भी रौद्रवीरयोर्गौडीया, रसान्तरेषु पाञ्चालिकी लाटीया च।
मधुरा वृत्तिः	'मधुरायां—समाक्रान्ता०'	'विलासविन्यासक्रमो वृत्ति'रिति वृत्तिसामान्यलक्षणम्। तस्या मधुरा प्रौढा परुषा ललिता भद्रा चेति पञ्च प्रकाराः।
प्रौढा वृत्तिः	'रेफाक्रान्ता वर्ग्य०'	
परुषा वृत्तिः	'सर्वैरूर्ध्वैः सक्रा०'	
ललिता भद्रा-वृत्ती	'लकारोऽन्यैर-सयु०'	
मधुरोदाहरणम्	'अङ्गभङ्गोल्लस०'	अत्र ङकारमिश्रित गकारद्वयं लकारसंयुक्तौ लकारौ रेफणकारौ च ह्रस्वान्तरितौ इति मधुरावृत्तिः।
प्रौढोदाहरणम्	'तर्ककर्कश०'	अत्र क—य (ण-वर्णा रेफाक्रान्ताः, तकारः क—पाभ्यामाक्रान्तः, 'त्क' इत्यत्र ककारस्य मूर्धनि तकार इति प्रौढा।
परुषोदाहरणम्	'वीप्सोत्सर्पन्०'	अत्र सकारोर्ध्वं प-त वर्णौ, प-ग-द वर्णाः रेफस्योपर्यधःस्थायिनः श—षौ च स्वतन्त्राविति परुषात्वम्।
ललिताभद्रोदाहरणे	'ललना रभसं०'	'ललना रभसं धत्तेघना-' इत्यत्र 'त्त'रहित वर्णा असंयुक्ता इति ललिता। 'टोपे महीयसी'-त्यत्र वर्णसंयोगाद्भद्रा।

सप्तमे ध्वनिनिरूपणम्—

विषयः	कारिका	विवरणम्
शक्तिरूपवृत्ति-त्रैविध्यम्	'वृत्तिभेदै-स्त्रिभि०'	भारती व्यञ्जनावृत्त्या गम्भीरा, लक्षणा-वृत्त्या कुटिला, अभिधावृत्त्या स सरला ।
व्यञ्जना वृत्तिः	'साम्मुख्यं विद०'	यथा कामिनी पुरुषाय कटाक्षेणार्थान्तरं प्रकाशयति तथैवार्थान्तरप्रकाशिका वृत्ति-र्व्यञ्जना नाम ।
अविवक्षित-वाच्यध्वनिः	'अविवक्षित-वाच्य०'	यत्र वाच्ये विवक्षाराहित्यं तत्राविवक्षित-वाच्यध्वनिर्लक्षणामूलध्वनिर्वा । स च द्विविधः अर्थान्तरसङ्क्रमितवाच्यध्वनिः (अजहल्लक्षणा-मूलध्वनिः) अत्यन्ततिरस्कृतवाच्यध्वनिश्च (जहल्लक्षणामूलध्वनिः) ।
विवक्षित-वाच्यध्वनिः	'द्वौ विवक्षित०'	विवक्षितान्यपरवाच्यध्वनिरभिधामूलध्वनिः स च संलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यध्वनिना (वस्त्व-लङ्काररूपेण) असंलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यध्वनिना (रसादिरूपेण) च द्विविधः । तत्र संलक्ष्य-क्रमव्यङ्ग्यस्यैकचत्वारिंशत्, असंलक्ष्यक्रमव्य-ङ्ग्यस्य च षट् इति सप्तचत्वारिंशद्भेदा उभयोः
संलक्ष्यक्रम-व्यङ्ग्यध्वनित्रैविध्यम्	'त्रिधा शब्दार्थ०'	संलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यध्वनिः-शब्दशक्तिमूलः अर्थशक्तिमूलः, शब्दार्थोभयशक्तिमूलश्चेति त्रिविधः ।
असंलक्ष्यक्रम-व्यङ्ग्यध्वनिरेकः	'रसभावतदा-भास०'	रस—भाव—रसाभास—भावाभास—भावोदय-भावशान्ति-भावसन्धि—भावशबलतारूपोऽसंलक्ष्य-क्रमव्यङ्ग्यध्वनिरेकविध एव तेषामन्योन्य-सम्बन्धे आनन्त्यदोषापातात् ।
शब्दशक्ति-ध्वनिः	'वस्त्वलङ्कारयो०'	शब्दशक्तिमूलध्वनिः वस्तुरूपोऽलङ्काररूप-श्चेति द्विधा ।
अर्थशक्तिध्वनिः	'अर्थशक्तिसमु०'	अर्थशक्तिमूलध्वनिर्द्वादशविधः । कवि-निबद्धवक्तृप्रौढोक्तिसिद्धिः कविप्रौढोक्तिसिद्धः,

विषयः	कारिका	विवरणम्
		स्वतःसम्भवी चेति प्रथमं त्रिविधः सः। प्रत्येकः वस्तुनाऽलङ्कारध्वनिः, अलङ्कारेण वस्तुध्वनिः, अलङ्कारेणालङ्कारध्वनिः, वस्तुना वस्तुध्वनिश्चेति चतुर्विधः। एवं द्वादश भेदा अर्थशक्तिमूलध्वनेः।
उभयशक्ति-ध्वनिः	'शब्दार्थोभयभू-'	शब्दार्थोभयशक्तिमूलध्वनिर्वाक्याश्रयोऽलङ्काररूप एकविध एव।
असंलक्ष्यक्रम-व्यङ्ग्यध्वने-राश्रयाः	'पदैकदेशे—'	असंलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यध्वनिःपदगतः पदांशगतः, रचनागतः वर्णगतः, वाक्यगतः, प्रबन्धगतश्चेति षड्विधः आश्रयभेदेन।
ंलक्ष्यक्रमव्य-ङ्ग्यध्वनेराश्रयाः थाऽविवक्षित-ाच्यध्वनेरपि	'एषु सप्तदश-'	एवञ्च—अविवक्षितवाच्यध्वनिः पदवाक्यगतत्वेन चतुर्विधः। विवक्षितान्यपरवाच्यध्वन्यन्तर्गतसंलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यध्वनौ शब्दशक्तिमूलः पदवाक्यगतत्वे चतुर्विधः, अर्थशक्तिमूलः पदवाक्यप्रबन्धगतत्वेन षट्त्रिंशद्विधः। उभयशक्तिमूलश्च वाक्यगतत्वेनैक इति एकपञ्चाशद्भेदाः। सङ्करसंसृष्टिभ्यां सम्मिलितास्तु सहस्रशो भेदाः स्युः।
क्तृस्यूतम्	'वक्तृस्यूतं बोध०'	वक्तृतात्पर्यविषयीभूतं व्यङ्ग्यं वक्तृस्यूतम्।
वाङ्कुरितम्	'स्वाङ्कुरितमतद्रूपं०'	वक्तृतात्पर्यविषयीभूतं व्यङ्ग्यं स्वाङ्कुरितम्।
क्तृस्यूतभेदाः	'कश्चित्साधारणः०'	बोद्धा चतुर्विधः—१–साधारणः (वक्तृतात्पर्यानभिज्ञः), २–आमन्त्र्यप्रतिबोधितः ३–तटस्थः (सम्बोध्यातिरिक्तः) ४–बोधितप्रतिबोधितश्च। एवं बोद्धभेदेन वक्तृस्यूतं चतुर्विधम्।
ाङ्कुरितभेदा	'उपेक्षानिह्नवाभ्यां०'	उपेक्षाविषयभूतं निह्नवविषयभूतञ्चेति स्वाङ्कुरितं द्विविधम्।
निह्नवविषयभूत-	'भूतादिकालभेदे०'	भूतनिह्नवः, भाविनिह्नवः, वर्तमाननिह्नव-

विषयः	कारिका	विवरणम्
स्वाङ्कुरितभेदाः		श्चेति त्रिधाः निह्नवः। अतो निह्नव विषयभूतं व्यङ्ग्यं त्रिविधम्।
वाच्यव्यङ्ग्यम्	'नाना प्रभेदा०-'	क्वचित्प्रकरणादिवशान्नानार्थकस्य शब्दस्यैकस्मिन्नर्थे नियमिते सति द्वितीयार्थस्य व्यञ्जनयोपस्थितौ वाच्यव्यङ्ग्यम्।

अष्टमे गुणीभूतव्यङ्ग्यनिरूपणम्—

विषयः	कारिका	विवरणम्
ध्वनिगुणीभूतव्यङ्ग्ययोरुत्तरम्	'तद्व्यज्यमात्तं०—'	व्यङ्ग्यस्य वाच्यार्थापेक्षया चमत्कृत्युत्पादकत्वे ध्वनिकाव्यम्। व्यङ्ग्यस्य वाच्यापेक्षया चमत्कारजनकत्वाभावे तु गुणीभूतव्यङ्ग्यकाव्यम्। तच्च मध्यमकाव्यं त्रिविधम्।
गुणीभूतव्यङ्ग्यभेदाः	'व्यक्त एव क्वचित्०'	प्रकटव्यङ्ग्यमेकम्, अचारुव्यङ्ग्यं द्वितीयम्, चारुतरवाच्यव्यङ्ग्यञ्च तृतीयम्। एतद्भेदत्रयन्तु ग्रन्थकृन्मते।
मतान्तरे गुणीभूतव्यङ्ग्यभेदाः:—		
अगूढम्	'अगूढं कलयेदर्था—'	अर्थान्तरसंक्रमितादौ व्यङ्ग्यप्राकट्ये अगूढव्यङ्ग्यम्। 'विस्मृत' इत्यत्र 'कुम्भसम्भव'पदे अत्यन्ततिरस्कृतवाच्यता, 'त्वये'तिपदेऽर्थान्तरसङ्क्रमितवाच्यता, 'अपांनाथे'तिपदे पदगतशब्दशक्तिमूलव्यङ्ग्यम्।
अपराङ्गम्	'अपरस्य रसादेश्चे'	रसभावादेः रसान्तरस्य भावान्तरस्य वाऽङ्गत्वे अपराङ्गम्। 'हाहे'त्यत्र शृङ्गारः करुणस्याङ्गम्। (अत्र रसवदलङ्कारः)।
वाच्यसिद्ध्यम्	'तथा वाच्यस्य०'	व्यङ्ग्यस्य वाच्योपकारत्वे वाच्यसिद्ध्यङ्गम्। 'संश्रितये'त्यत्र 'नौकारूप'व्यङ्ग्योऽर्थः 'व्याधिवारिधि' रूपवाच्यार्थस्योपकारकः।
अस्फुटम्	'अस्फुटं स्तनयोरत्र०'	सहृदयैरपि विलम्बवेद्यत्वमस्फुटव्यङ्ग्यत्वम्। 'कुङ्कुमाक्त'मित्यत्रस्तनद्वन्द्वस्य लोकसादृश्यं व्यङ्ग्यं विलम्बवेद्यम्।

विषयः	कारिका	विवरणम्
सन्दिग्धप्राधान्यम्	'सन्दिग्ध यदि०'	वाच्यव्यङ्ग्ययोः प्राधान्यसन्देहे सन्दिग्धप्राधान्यम्। 'सम्प्राप्त' इत्यत्र नेत्रदैर्घ्य-कमलासादृश्ययोर्वाच्यव्यङ्ग्ययोर्मध्ये कस्य प्राधान्यमिति सन्देहः।
तुल्यप्राधान्यम्	'तुल्यप्राधान्य०'	यत्र वाच्यव्यङ्ग्ययोश्चमत्कृतौ समता तत्र तुल्यप्राधान्यव्यङ्ग्यम्। 'कान्त' इत्यत्र मुखे चन्द्रसाम्यं व्यङ्ग्यम्, तेनेन्दुत्वरूपव्यङ्ग्यस्य पङ्कजपराभवरूपवाच्यस्य च चमत्कृतिसाम्यात्तुल्यप्राधान्यम्।
असुन्दरम्	'असुन्दरं यदि०'	वाच्याद्व्यङ्ग्यमचमत्कारकारि यत्र तत्राऽसुन्दरव्यङ्ग्यम्। 'सरसी'त्यत्र 'चक्रवाकवियोगो भविष्यती'ति व्यङ्ग्यं वाच्यादचमत्कारि।
काक्वाक्षिप्तम्	'काकुस्थं प्रणतो०'	'काकु'ध्वनिद्वाराव्यङ्ग्यस्फुटीकरणे काक्वाक्षिप्तम्। 'काकुस्थ'मित्यत्रा'ऽयमायतु रावण' इति काक्वाऽक्षिप्तं 'मदो गतप्राय' इति व्यङ्ग्यं स्फुटमेव।
उपसंहारः	'इत्यष्टधा गुणी०'	एवं मतान्तरे गुणीभूतव्यङ्ग्यकाव्यस्याष्टौ भेदाः।

नवमे लक्षणानिरूपणम्

विषयः	कारिका	विवरणम्
लक्षणा लक्षणम्	'मुख्यार्थं-स्यावि०'	मुख्यार्थबाधमुख्यार्थसम्बन्धरूढिप्रयोजनान्यतरहेतुकत्वे सति मुख्यार्थातिरिक्तार्थान्तर-प्रतिपादनरूपा वृत्तिर्लक्षणा नाम। तत्र रूढिलक्षणा 'पूर्वा' प्रयोजनवती च 'अर्वाची'।
लक्षणाभेदाः	'लक्षणीयस्व-शब्द०'	द्विविधापि लक्षणा लक्ष्यवाचकपदोपादानेन लक्ष्यवाचकपदानुपादानेन च चतुर्धा। तत्र सिद्धा, साध्या, साध्याङ्गिनी चेति प्रत्येकं त्रिविधा। एवं लक्षणा द्वादशविधा। (तत्र रूढलक्षणा षड्विधैव।)

विषयः	कारिका	विवरणम्
प्रयोजनवती-लक्षणाभेदाः	'स्फुटाऽस्फुट-प्रभे०'	प्रयोजनं द्विविधं स्फुटमस्फुटञ्चेति । तत्र स्फुटं प्रयोजनं तटस्थगतमर्थगतञ्चेति द्विविधम्, अस्फुटं प्रजोजनमपि प्राग्वद्द्विविधम् । तत्रार्थगतमपि लक्ष्यार्थनिष्ठं लक्षकार्थनिष्ठञ्चेति द्विविधम् इति पूर्वोक्ताऽर्वाची (प्रयोजनवती) षड्विधा लक्षणा प्रयोजनभेदेन षट्त्रिंशद्विधा । एका लक्षकस्थस्फुटप्रयोजना 'विचक्षणलक्षणा' नाम्ना निर्दिश्यते ।
लक्ष्यलक्षकस्थ-स्फुटप्रयोजनोदाहरणम्	'इन्दुरेवैष०'	अत्र 'वक्त्र' पदेन वक्त्रतादात्म्यापन्न इन्दुर्लक्ष्यते इति वक्त्रपदमिन्दुलक्षकम् इन्दुश्च लक्ष्यम्, उत्कर्षश्च स्फुटं प्रयोजनम् । इति लक्षकनिष्ठस्फुटप्रयोजना । यदा चन्द्रपदं वक्त्र लाक्षणिकं तदा तु लक्ष्यनिष्ठस्फुटप्रयोजना ।
तटस्थनिष्ठा-स्फुटास्फुटप्रयोजना यथा	'प्रदीपं वर्धये-त्तत्र०'	अत्र दीपनिर्वाणं लक्ष्यते अमङ्गलपरिहारश्च प्रयोजनम् । एतच्च प्रकरणादिसत्त्वे स्फुटम्, तदभावेऽस्फुटम् ।
लक्षकस्थाऽस्फुट-प्रयोजना यथा	'पटोऽयं दग्ध०'	अत्र पटैकदेशेऽयं प्रयोगः कर्मानिर्हंतारूपं प्रयोजनम् तच्चाऽस्फुटम्, लक्षकपटनिष्ठञ्च ।
लक्ष्यस्थाऽस्फुट-प्रयोजना यथा	'अमृतं सूक्त-मित्यादौ०'	अत्रामृतपदेन सरससुभाषितकाव्यं लक्ष्यते, अतिहृद्यतारूपप्रयोजनप्रतीतिश्च स्फुटा लक्ष्ये काव्ये एव ।
लक्षणबीज-सम्बन्धाः	'आभिमुख्या-त्सन्नि०'	एतेभ्यो शक्यलक्ष्यसम्बन्धेभ्यो नवसंख्यकेभ्यो लक्षणा भवतीति भावः ।
मतान्तरे लक्षणाभेदाः	'सारोपाऽध्य-वसा०'	उपमानोपमेययोरभेदेनोक्तौ सारोपा । उपमानेनोपमेयनिगरणे च साध्यवसाना । सारोपा साध्यवसाना च गौणीशुद्धाभेदेन चतुर्विधा । सादृश्यसम्बन्धवती गौणी, तदितरसम्बन्धवती च शुद्धा ।

विषयः	कारिका	विवरणम्
गौणी सारोपा यथा	'गौणं सारोप०'	'इन्दुर्मुख'मित्यत्र मुखे सादृश्यसम्बन्धादिन्दुत्वारोपः। तेन 'इन्दुतादात्म्यापन्नं मुख'मिति तदर्थः।
गौणी साध्यवसाना यथा	'गौणं साध्यवसानं०'	'इन्दुरेवे'त्यत्र उपमानेन चन्द्रेणोपमेयं मुखं निगीर्यते। तेन चन्द्राभिन्नं मुखमिति प्रतीयमानोऽर्थः।
शुद्धा सरोपा यथा	'शुद्धं सारोपमुद्दिष्ट०'	'आयुर्घृत'मित्यत्र कार्यकारणभावसम्बन्धाद्घृते उपमेये आयुषोपमानस्यारोपः, तेनायुष्कारणं घृतमिति फलितम्।
शुद्धा साध्यवसाना यथा	'शुद्धं साध्यवसानं०'	'आयुरेवे'त्यत्र आयुषोपमानेन घृतमुपमेयं निगीर्यते, तेनायुष्कारणं घृतमिति लक्ष्योऽर्थः।
शुद्धाभेदाः	'उपादानार्पणद्वारे०'	शुद्धाया उपादानलक्षणा, अर्पणलक्षणा चेति द्वौ भेदौ। तेन मतान्तरे (मम्मटमते) षड्विधा लक्षणाभेदाः।
द्वयोरुदाहरणे	'कुन्ता विशन्ति०'	'कुन्ता विशन्ती'त्यत्र कुन्तानां प्रवेशान्वयसिद्ध्यर्थं तद्वन्तः पुरुषा लक्ष्यन्ते इति कुन्तार्थरूपमुख्यार्थस्याप्युपादानम्, अतोऽत्र शुद्धा साध्यवसानोपादानलक्षणा। 'गङ्गायां घोषः' इत्यत्र गङ्गारूपमुख्यार्थत्यागेन तीररूपलक्ष्यार्थबोधः इति शुद्धा सारोपाऽर्पणलक्षणा।
सिद्धासाध्याभेदौ	'लक्ष्यलक्षक०'	लक्ष्यलक्षकपदेषु विशेषणोपादाने विशेषणवती सिद्धा, विशेषणवती साध्या चेति द्वावन्यौ भेदौ। 'सरसं काव्यममृत'मित्यत्र लक्ष्यपदे 'सरस'मिति विशेषणोपादानात् विशेषणवती सिद्धा। 'विद्या स्थिरतरं धन'मित्यत्र 'धन'मिति लक्षकपदे 'स्थिरतर'मिति विशेषणोपादाद्विशेषणवती साध्या।

विषयः	कारिका	विवरणम्
अन्यद्भेदद्वयम्	'तथा सहेतुर तथा०'	हेतूपादाने सहेतुः, हेत्वनुपादाने निर्हेतुरित्यन्यद्भेदद्वयम्। 'सौन्दर्येणैष कन्दर्प' इत्यत्र सहेतुः, 'सा च मूर्तिमती रति'रित्यत्र निर्हेतुः।
लक्षणाश्रयाः	'शब्दे पदार्थे०'	शब्दे, पदार्थे, वाक्यार्थे, सङ्ख्यायाम्, कारके, लिङ्गे च लक्षणा तिष्ठति। इयं लक्षणाऽलङ्काराणां बीजभूता।

दशमे अभिधानिरूपणम्—

विषयः	कारिका	विवरणम्
अभिधास्वरूपम्	'धर्मकश्चित्पुरस्कृ०'	सङ्केतितार्थविषयीभूतबोधजनको व्यापारोऽभिधा।
धर्माश्रयेण तस्याः षड्विधत्वम्	'जात्या गुणेन०'	धर्मः षड्विधः। जातिः, गुणः, क्रिया, वस्तुयोगः, निर्देशः, संज्ञा च। तद्वाचकशब्दानाश्रित्याभिधाऽपि षड्विधा।
जात्यादिशब्दोदाहरणानि	'गौर्नीलः पाचको०'	'गौ'रिति गोत्वरूपजातिवाचकशब्दः' एवं 'नील' इति नीलत्वगुणवाचकः, 'पाचक' इति पाकक्रियावाचकः, 'दण्डी'ति, दण्डत्ववस्तुयोगवाचकः, 'डित्थ' इति डित्थत्वसंज्ञावाचकः, 'कंस' इति च वर्णनिर्देशवाचकः शब्दः।
निर्देशशब्दस्य लक्षणसमन्वयः	'कं संहिनस्ति०'	'कं संहिनस्ती'त्यत्र कंकारसकाररूपवर्णनिर्देशा'न्नरं कञ्चे'त्यत्र च नकाररककाररूपवर्णनिर्देशात् 'कंस''नरक'शब्दौ निर्देशवाचकौ। एवञ्च कंसादिशब्दौ यत्र व्युत्पत्त्या निर्दिश्यते तत्र तस्य निर्देशवाचकत्वम्।
निर्देशशब्दे-योगिकत्वादेर्निरसनम्	'न योगादेरायतनं०'	नायं यौगिको, नापि रूढः, नापि संज्ञावाचकः, अपि तु तदतिरिक्त एषः वर्णस्वरूपप्रकाशकः।

परिशिष्टम् (२)

उदाहरणानुक्रमणिका

(अ)

अक्रमः कृष्ण ! पूज्यन्ते	भग्नप्रक्रमः	(दोषः)
अग्रे मानो गतः पश्चात्	अत्यन्तातिशयोक्तिः	(अलङ्कारः)
अङ्गभङ्गोल्लसल्लीला	मधुरा प्रौढा च	(वृत्ती)
अङ्गयष्टिधनुर्वल्ली	आभासरूपकम्	(अलङ्कारः)
अङ्गयष्टिः	रूपितरूपकम्	(")
अजरामरता कस्य	भङ्गश्लेषः	(")
अनुरूपं कृतं सद्म	समम्	(")
अपराधीनः	विरुद्धमतिकृत्	(दोषः)
अप्यन्धकारिणाऽनेन	विरोधाभासः	(अलङ्कारः)
अप्यम्बुधेः परं पारम्	विशेषनिबन्धनाऽप्रस्तुतप्रशंसा	(")
अलन्दचन्दनस्यन्दः	विरोधः	(")
अमृतं सूक्तम्	लक्ष्यस्थाऽस्फुटप्रयोजना	(लक्षणा)
अयमैन्द्रीमुखं पश्य	समासोक्तिः	(अलङ्कारः)
अयं प्रमत्तमधुपः	भ्रान्तिमान्	(")
अर्थान्तरपदापेक्षि —	अर्थान्तरपदापेक्षि	(दोषः)
अलं विलोकयाऽप्यापि	भाविकम्	(अलङ्कारः)
असावुदेति शीतांशुः	कार्यम्	(लक्षणम्)
अस्ति किञ्चिदनया	अनुमानम्	(अलङ्कारः)
अहो ! अन्यैव लावण्य—	भेदकातिशयोक्तिः	(")

(आ)

आयुर्घृतम्	शुद्धा सारोपा	(लक्षणा)
आयुरेवेदम्	शुद्धासाध्यवसाना	(")
आलिङ्गन्ति समं देव !	अक्रमातिशयोक्तिः	(अलङ्कारः)
आह्लादसाधनं वायुः	त्रिविधमश्लीलम्	(दोषः)

(इ)

इन्दुरिन्दुरिव	अनन्वयः	(अलङ्कारः)
इन्दुरेवेदम्	गौणी साध्यावसाना	(लक्षणा)
इन्दुरेवैष तद्वक्त्रम्	लक्ष्यलक्षकस्थस्फुटप्रयोजना	(")
इन्दुर्मुखम्	गौणी सारोपा	(")
इन्दुर्मुखमिव	प्रतीपोपमा	(अलङ्कारः)
इन्दुर्यदि, कथं तीव्रः ?	अभिमानः	(लक्षणम्)
इयमद्भुतशाख्यग्र—	अनुचितार्थम्	(दोषः)

(ई)

इदृशैश्चरितैः राजन् !	निरुक्तम्	(लक्षणम्)

(उ)

उच्छलद्भूरिकीलालः	खण्डश्लेषः	(अलङ्कारः)
उत्कण्ठिताश्च कलयन्	समाधिः	(")
उत्तुङ्गहारशोभिपयोधरौ	अन्यसङ्गतम्	(दोषः)
उत्सिक्तक्षितिभृल्लक्ष्य—	सोपाधिरूपम्	(अलङ्कारः)
उल्लसत्तनुनां नीते—	श्लेषः	(अलङ्कारः)
उल्लसत्पश्चशाखस्ते	सादृश्यरूपकम्	(अलङ्कारः)
उषाकान्तेनानुगतः	अक्षरसंहतिः	(लक्षणम्)

(ए)

एकं मे चुम्बनं देहि	वाक्यगतग्राम्यम्	(दोषः)
एष पीयूषभाजनम्	समाप्तपुनरात्तम्	(")

(ऐ)

ऐयरुः कुञ्जराः पुरम्	विकृतम्	(दोषः)

(अं)

अंशुकान्तं शशी कुर्वन्	पुनरुक्तप्रतीकाशम्	(अलङ्कारः)

(क)

कमलैः कमलावासैः	सामान्यनिबन्धनाऽप्रस्तुत-प्रशंसा	(अलङ्कारः)

कर्णोत्पलानि दधते	अनुगुणः	(अलङ्कारः)
कलिन्दजातीरुहाः	प्रौढोक्तिः	(,,)
कस्ते विवेको ? नयसि	व्याजस्तुतिः	(,,)
काकुत्स्थं प्रथतोऽम्भोधिः	काक्वाक्षिप्तम्	(गुणीभूतव्यङ्ग्यम्)
कान्ताचित्तेऽधरे वापि	विकल्पः	(अलङ्कारः)
कान्ते ! त्वदाननरुचा	तुल्यप्राधान्यम्	(गुणीभूतव्यङ्ग्यम्)
कान्तेन पृष्टा रहसि	परिणामः	(अलङ्कारः)
कीर्तिलतां तरङ्गयसि यः सदा	अनौचित्यम्	(दोषः)
कुङ्कुमाक्तं स्तनद्वयम्	अस्फुटम्	(गुणीभूतव्यङ्ग्यम्)
कुटिलाः श्यामला दीर्घाः	अर्थश्लेषः	(अलङ्कारः)
कुण्डलच्छविविग्रहा	सामान्यपरिवृत्तिः	(दोषः)
कुतस्तत्रोपमा ? यत्र	पुनरुक्तम्	(,,)
कुन्ता विशन्ति, गङ्गायां	उपादानाऽर्पणलक्षणे	(लक्षणा)
कुरङ्गैरुत्तरङ्गाक्षैः	स्वभावोक्तिः	(अलङ्कारः)
केतकी शेखरे शम्भोः	विद्याविरुद्धम्	(दोषः)
को वेद ! गोपशिशुकः	असम्भवः	(अलङ्कारः)
क्वाऽतितीव्रविषाः सर्पाः ?	विषमम्	(,,)

(ग)

गतेऽपि सूर्ये दीपस्थाः	विशेषः	(अलङ्कारः)
गम्भीरारम्भदम्भोलि—	पतत्प्रकर्षम्	(दोषः)
गौर्नीलः पाचको दण्डी	जात्यादिवाचकशब्दाः	(अभिधा)

(च)

चतुर्णां पुरुषार्थानां	परिकराङ्कुरः	(अलङ्कारः)
चन्दनं खलु गोविन्द—	अर्थानुप्रासः	(,,)
चन्द्र ! सन्दर्शयात्मानम्	आक्षेपः	(,,)
चन्द्रांशुसूत्रग्रथितां	मिथ्याध्यवसायः	(लक्षणम्)

(ज)

जग्राहैकं शरं मुक्त्वा	परिवृत्तिः	(अलङ्कारः)
जितोऽसि मन्द ! कन्दर्प !	काव्यलिङ्गम्	(,,)
जैत्रनेत्रानुगौ कर्णौ	प्रत्यनीकम्	(,,)

(त)

तदभाग्यं धनस्यैव	उल्लासः	(अलङ्कारः)
तव दुग्धाब्धिसम्भूतेः	दोषाङ्कुशः द्वितीयः	
तापेन भ्राजते सूर्यः	प्रतिवस्तूपमा	(अलङ्कारः)
तृणान्यङ्कुरयामास	पर्यायोक्तिः	(,,)
ते च भ्रान्तिस्फुरत्कान्ति—	त्रिविधयौगिकशब्दाः	
ते च वृक्षादिभूवादि—	त्रिविधरूढशब्दाः	
त्यक्तहारमुरः कृत्वा	अमतार्थान्तरम्	(दोषः)
त्रियामा शशिना भाति	अन्योन्यम्	(अलङ्कारः)
त्वकीर्तिविभ्रमश्रान्ता	गूढोत्प्रेक्षा	(,,)
त्वत्खड्गसम्भूत—	न्यूनम्	(दोषः)
त्वद्भक्तानां नमत्यङ्गं	असङ्गतिः	(अलङ्कारः)
त्वद्भक्तः कृष्ण ! गच्छेयं	दुष्क्रमः	(दोषः)
त्वन्नेत्रयुगलं धत्ते	ललितोपमा	(अलङ्कारः)
त्वन्मुखश्रीकृते नूनं	उत्प्रेक्षा	(,,)
त्वयि दातरि राजेन्द्र !	अत्युक्तिः	(,,)
त्वं वसन् हृदये तस्याः	भाविकच्छविः	(,,)

(द)

दधार गौरी हृदये	दोषाङ्कुशस्तृतीयः	
दिगन्तमगद्यस्य	सहोक्तिः	(अलङ्कारः)
दीपमुद्योतयेद्यावत्	प्रहर्षणम्	(,,)
,, ,, ,,	विषादनम्	(,,)
दीपे निर्वापिते ह्यासीत्	पूर्वरूपता द्वितीया	(,,)
दीप्त्याग्निर्भाति, भातीन्दुः	आवृत्तिदीपकम्	(,,)
दृष्टञ्चेद्वदनं तस्याः	प्रतीपम्	(,,)
दृष्टान्तश्चेद्भवन्मूर्त्तिः	दृष्टान्तः	(,,)
द्विषां सम्पदमाच्छिद्य	अस्थानस्थसमासम्	(दोषः)

(ध)

धत्ते नभस्तलं भास्वान्	अवाचकम्	(दोषः)
धर्मोऽर्थं इव पूर्णश्रीः	उपमेयोपमा	(अलङ्कारः)

धूमवत्त्वादिति यथा	वाक्यखण्डवाक्ये	
ध्वाङ्क्षाः सन्तश्च तनयं	सहचराचारु	(दोषः)

(न)

नद्यां यान्ति पतत्त्रिणः	सन्दिग्धम्	(दोषः)
नमन्तमपि धीमन्तं	विशेषोक्तिः	(अलङ्कारः)
नमन्ति सन्तस्त्रैलोक्यात्	विचित्रम्	(,,)
न मामङ्गद ! जानासि	प्रतिकूलाक्षरम्	(दोषः)
न युद्धेन भुवोः स्पन्दे—	प्रतिषेधः	(लक्षणम्)
नयेन श्रीः श्रिया त्यागः	कारणमाला	(अलङ्कारः)
नवस्त्वं नीरदः कोऽपि	युक्तिः	(लक्षणम्)
नश्यन्ति पश्चात् भ्रश्यन्ति	समुच्चयः	(अलङ्कारः)
नायं सुधांशुः, किं तर्हि ?	अपह्नुतिः	(,,)
,, ,, ,,	पर्यस्तापह्नुतिः	(,,)
निर्यान्ति स्मरनाराचाः	कैतवापह्नुतिः	(,,)
नीरधिः पङ्कजं सौधं	योगरूढशब्दाः	(,,)
नृपतौ इमौ	विसन्धिः	(दोषः)
नेत्रे कर्णान्तविश्रान्ते	एकावली	(अलङ्कारः)
नेन्दुर्नार्कोऽयमौर्वाग्निः	हेतुः	(लक्षणम्)
न्यस्तेयं पश्य कन्दर्पं !	प्रसिद्धिविरुद्धम्	(दोषः)

(प)

पङ्कजं पश्यतः कान्ता-	स्मृतिमान्	(अलङ्कारः)
पङ्कजं वा सुधांशुर्वे	ससन्देहः	(,,)
पटवागच्छ	कुसन्धिः	(दोषः)
पटोऽयं दग्धः	लक्षकस्थाऽस्फुटप्रयोजना	(लक्षणा)
पद्मरागारुण नासा	तद्गुणः	(अलङ्कारः)
पद्माकरप्रविष्टानां	सामान्यम्	(,,)
पद्मानीव विनिद्राणि	सम्पूर्णोपमा	(,,)
पद्मं मुक्त्वा गता चन्द्रं	पर्यायः	(,,)
पश्य नीलोत्पलद्वन्द्वात्	रूपकातिशयोक्तिः	(,,)

पश्य, सौधाग्रसंसक्तं	सम्बन्धातिशयोक्तिः	(अलङ्कारः)
प्रजल्पन्मत्पदे लग्नः	छेकापह्नुति	(,,)
प्रदीपं वर्धयेत्	तटस्थनिष्ठास्फुटाऽस्फुट-प्रयोजना	(लक्षणा)
प्रिये गृहागते प्रातः	पिहितम्	(अलङ्कारः)
	(ब)	
ब्रह्माण्डं त्वद्यशःपूर—	वाक्यसङ्कीर्णता	(दोषः)
बूत, किं सेव्यतां चन्द्र—	वाक्यसन्दिग्धम्	(,,)
	(भ)	
भवतः शत्रून् दशत्यसिलताफणी	अधिकम्	(दोषः)
	(म)	
मधुरं मधु पीयूषं	उदारसारः	(अलङ्कारः)
मस्तपिष्टकटीलोष्ठ	ग्राम्यम्	(दोषः)
मानं मुञ्च प्रिये ! किञ्चित्	उदारता	(गुणः)
मुखं चन्द्रश्रियं धत्ते	दोषाङ्कुशः प्रथमः	
मुधा मानं दिनं प्राप्तं	वक्रोक्तिः	(अलङ्कारः)
मुधानिन्दन्ति संसारं	शोभा	(लक्षणम्)
मेधां बुधः सुधामिन्दुः	दीपकम्	(अलङ्कारः)
म्लायन्ति यदि पद्मानि	अवज्ञा	(,,)
	(य)	
यत्र स्यान्न पुनः शत्रोः	लाटानुप्रासः	(अलङ्कारः)
यत्रासौ वेतसी पान्थ !	प्रश्नोत्तरम्	(,,)
मया व्याप्तं जगत्तस्यां	अधिकम्	(,,)
या दातुः सौम्यता, सेयं	निदर्शना	(,,)
'यामी'ति प्रियपृष्टायाः	चपलातिशयोक्तिः	(,,)
युवामेवेह विख्यातौ	सिद्धिः	(लक्षणम्)
येन बद्धोऽम्बुधिर्यस्य	अभवन्मतयोगः	(दोषः)
यैर्जगत्प्रीयते, हन्ति	व्याघातः	(अलङ्कारः)
	(र)	
रसो नालक्षि लाक्षायाः	मीलितम्	(अलङ्कारः)
रिपुं हत्वा यशः कृत्वा	ओजः	(गुणः)

(ल)

लक्षितान्युदिते चन्द्रे	उन्मीलितम्	(अलङ्कारः)

(व)

वक्त्रेण भ्राजते रात्रिः,	पदसङ्कीर्णता	(दोषः)
वनिता मम चेतसि	विशेषपरिवृत्ति	(")
वयस्य ! पश्य पश्यास्याः	माधुर्यम्	(गुणः)
विद्या हृद्यापि साऽवद्या	विनोक्तिः	(अलङ्कारः)
विशन्ति विशिखप्रायाः	अविमृष्टविधेयांशः	(दोषः)
विशन्ति हृदयं कान्ता	अपुष्टार्थः	(")
विशन्नपि रवेर्मध्यं	अतद्गुणः	(अलङ्कारः)
विशाललोचने ! पश्या-	हतवृत्तम्	(दोषः)
विस्मृतः किमपां नाथ !	अगूढम्	(गुणीभूतव्यङ्ग्यम्)
वीप्सोत्सर्पन्मुखाग्राद्रं	परुषाललिताभद्रा	(वृत्तयः)

(श)

शत्रुं मित्रं द्विषत्पक्षं	यथासङ्ख्यम्	(अलङ्कारः)
शयने लिल्ये	शिथिलम्	(दोषः)
शरीरं तव सोत्कम्पं	भ्रान्तापह्नुतिः	(अलङ्कारः)
शैला इवोन्नताः सन्तः	व्यतिरेकः	(")
श्यामला कोमला बाला	समता	(गुणः)
श्यामाब्जश्यामलोचना	कथितम्	(दोषः)
श्रितोऽस्मि चरणौ विष्णोः,	स्तबकोपमा	(अलङ्कारः)

(स)

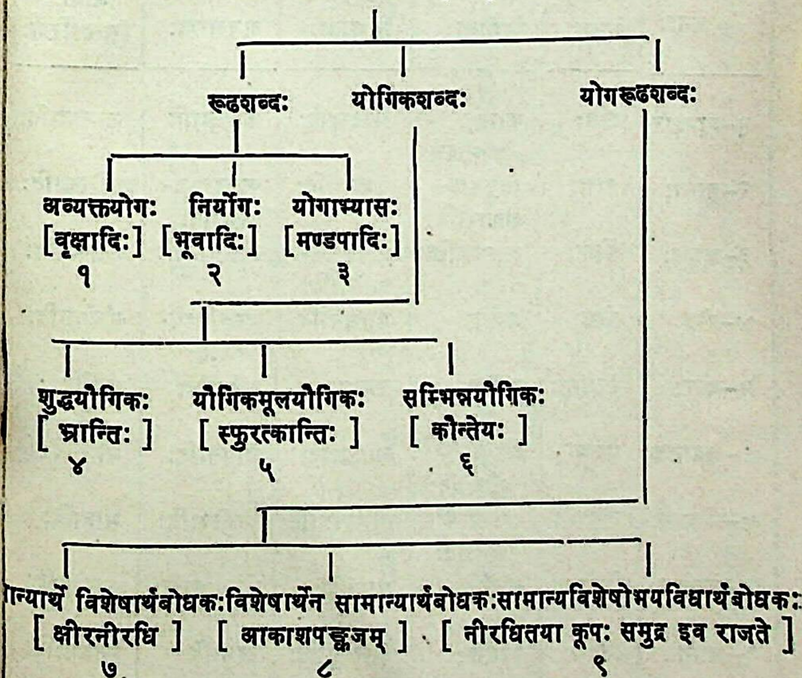
स कथाशेषतां यातः	सौकुमार्यम्	(गुणः)
सखि ! पश्य, गृहाराम-	व्याजोक्तिः	(अलङ्कारः)
सङ्कुचन्ति सरोजानि	तुल्ययोगिता	(")
स जितस्त्वन्मुखेनेन्दुः,	अर्थापत्तिः	(")
स न जिग्ये, महान्तो हि	विकस्वरः	(")
सम्प्राप्ते नयने तस्याः	सन्दिग्धप्राधान्यम्	(गुणीभूतव्यङ्ग्यम्)
सरसं काव्यामृतं	विशिष्टसिद्धासाध्ये	(लक्षणा)

—०—

परिशिष्टम् (३)

प्रथमे मयूखे

तालिका (१)



तालिका (२)

रसानां स्थायिभावादयः

रसाः	स्थायि-भावाः	आलम्बन-विभावाः	उद्दीपन विभावाः	अनुभावाः	व्यभिचारि-भावाः (सञ्चारिणः)
१–शृङ्गारः	रतिः	कान्ता कान्तश्च	चन्दनादिः	कटाक्षादि	उन्मादादिः
२–हास्यः	हासः	विदूषक-शकारादिः	वैरूप्यादिः	फुल्लगण्ड-त्वादिः	अवहित्थादिः
३–करुणः	शोकः	आप्तव्यक्तिः	अभीष्टवि-प्रयोगादिः	अश्रुपातादिः	ग्लान्यादिः
४–रौद्रः	क्रोधः	शत्रवः	मात्सर्यादिः	हस्तनिष्पे-षादिः	संमोहादिः
५–वीरः	उत्साहः	नायकः	प्रभावादिः	स्थैर्यादिः	गर्वादिः
६–भयानकः	भयम्	स्त्री-बाल-नीचादिः	व्याघ्रादिः	वेपितादिः	मोहादिः
७–बीभत्सः	जुगुप्सा	दुर्गन्ध-मांस शवादिः	कृमिपातादिः	निष्ठीवादिः	मोहादिः
८–अद्भुतः	विस्मयः	अलौकिकं वस्तु	मायादिः	रोमाञ्चादिः	स्तम्भादिः
९–शान्तः	निर्वेदः	विरक्तः	सत्सङ्गादिः	क्षमादिः	स्तम्भादिः

सप्तमे मयूखे

तालिका (३)

ध्वनिः (५१)

- अविवक्षितवाच्यध्वनिः (लक्षणामूलध्वनिः)
  - अर्थान्तरसंक्रमितवाच्यध्वनिः (उपादानलक्षणामूलः)
    - पदगतः १
    - वाक्यगतः २
  - अत्यन्ततिरस्कृतवाच्यध्वनिः (अर्पणलक्षणामूलः)
    - पदगतः ३
    - वाक्यगतः ४
- विवक्षितान्यपरवाच्यध्वनिः (अभिधामूलध्वनिः)
  - संलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यध्वनिः (वस्त्वलङ्कारारूपः)
    - शब्दशक्तिमूलध्वनिः
    - अर्थशक्तिमूलध्वनिः
    - उभयशक्तिमूलध्वनिः
  - असंलक्ष्यक्रमव्यङ्ग्यध्वनिः (रसादिरूपः)
    - पदगतः ४६
    - पदांशगतः ४७
    - रचनागतः ४८
    - वर्णगतः ४९
    - वाक्यगतः ५०
    - प्रबंधगतः ५१

वस्तुध्वनिः

पदगतः ५ वाक्यगतः ६

अलङ्कारध्वनिः

पदगतः ७ वाक्यगतः ८

अलङ्कारध्वनिः (वाक्यगतः) ४५

कविनिबद्धवक्तृप्रौढोक्तिसिद्धः

वस्तुना अलं., अलङ्कारेण व., अ. अ., व. व.,

कविप्रौढोक्तिसिद्धः

व. अ., अ. व., अ. अ., व. व.,

स्वतःसिद्धः

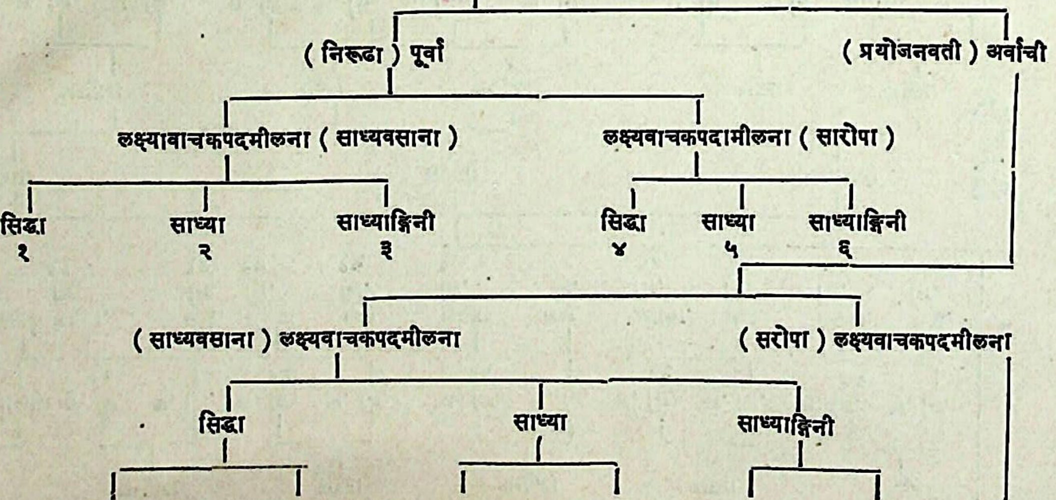
व. अ., अ. व., अ. अ., व. व.,

प. वा. प्र. प. वा. प्र. प. वा. प्र. प. वा. प्र. प. वा. प्र. प. वा. प्र. प. वा. प्र. प. वा. प्र. प. वा. प्र. प. वा. प्र. प. वा. प्र. प. वा. प्र.

९,१०,११,१२,१३,१४,१५,१६,१७,१८,१९,२०,२१,२२,२३,२४,२५,२६,२७,२८,२९,३०,३१,३२,३३,३४,३५,३६,३७,३८,३९,४०,४१,४२,४३,४४

नवमे मयूखे

(तालिका ४)


लक्षणा (कुटिला ४२)
(निरूढा) पूर्वा
(प्रयोजनवती) अर्वाची
लक्ष्यावाचकपदमीलना (साध्यवसाना)
लक्ष्यवाचकपदामीलना (सारोपा)
सिद्धा १
साध्या २
साध्याङ्गिनी ३
सिद्धा ४
साध्या ५
साध्याङ्गिनी ६
(साध्यवसाना) लक्ष्यवाचकपदमीलना
(सरोपा) लक्ष्यवाचकपदमीलना
सिद्धा
साध्या
साध्याङ्गिनी

स्फुटा — तटस्थनिष्ठा ७, अर्थनिष्ठा
अर्थनिष्ठा — लक्ष्यार्थनिष्ठा ८, लक्षकार्थनिष्ठा ९

अस्फुटा — त. नि. १०, अ. नि.
अ. नि. — लक्ष्या. नि. ११, लक्ष. नि. १२

स्फुटा — त. नि. १३, अ. नि.
अ. नि. — लक्ष्या. नि. १४, लक्ष. नि. १५

अस्फुटा — त. नि. १६, अ. नि.
अ. नि. — लक्ष्या. नि. १७, लक्ष. नि. १८

स्फुटा — त. नि. १९, अ. नि.
अ. नि. — लक्ष्या. नि. २०, लक्ष. नि. २१

अस्फुटा — त. नि. २२, अ. नि.
अ. नि. — लक्ष्या. नि. २३, लक्ष. नि. २४

सिद्धा
- स्फुटा — त. नि. २५, अ. नि. (लक्ष्या. नि. २६, लक्ष. नि. २७)
- अस्फुटा — त. नि. २८, अ. नि. (लक्ष्या. नि. २९, लक्ष. नि. ३०)

साध्या
- स्फुटा — त. नि. ३१, अ. नि. (लक्ष्या. नि. ३२, लक्ष. नि. ३३)
- अस्फुटा — त. नि. ३४, अ. नि. (लक्ष्या. नि. ३५, लक्ष. नि. ३६)

साध्याङ्गिनी
- स्फुटा — त. नि. ३७, अ. नि. (लक्ष्या. नि. ३८, लक्ष. नि. ३९)
- अस्फुटा — त. नि. ४०, अ. नि. (लक्ष्या. नि. ४१, लक्ष. नि. ४२)

कतिपय परीक्षोपयोगी प्रश्नोत्तरात्मक-ग्रन्थ

साहित्यदर्पणालोकः (प्रश्नोत्तरात्मकः) । श्री रामजी लाल शर्मा १२—००
काव्यप्रकाश-रहस्यम् (प्रश्नोत्तरात्मकः) । श्री रामजी लाल शर्मा १०—००
चन्द्रालोक-रहस्यम् (प्रश्नोत्तरात्मकः) । मानवल्ली तथा वेताल १०—००
शिशुपालवध-रहस्यम् (प्रश्नोत्तरात्मकः) । १—४ सर्ग । अशोकचन्द्र गौड़ १०—००
सांख्यकारिकादर्शः (प्रश्नोत्तरात्मकः) । श्री राजेन्द्रप्रसाद कोठधारी ५—००
अलङ्कारशास्त्रस्येतिहासः (प्रश्नोत्तरात्मकः) । श्रीपरमेश्वरदीन पाण्डेय ६—००
नलचम्पू-रहस्यम् (प्रश्नोत्तरात्मकः) । १—५ उच्छ्वास । परमेश्वरदीनपाण्डेय ८—००
वेदान्तसार-प्रदीपः (प्रश्नोत्तरात्मकः) । श्री राजेन्द्रप्रसाद कोठधारी ६—००
मध्यसिद्धान्तकौमुदी-चन्द्रिका (प्रश्नोत्तरात्मकः) । विजयमित्र शास्त्री २५—००
मृच्छकटिक-सोपानम् (प्रश्नोत्तरात्मकः) । डॉ० नरेश झा ९—००
वेणीसंहार-रहस्यम् (प्रश्नोत्तरात्मकः) । श्री परमेश्वरदीन पाण्डेय ७—००
नैषध-रहस्यम् (प्रश्नोत्तरात्मकः) । १—५ सर्ग । श्री रमाशंकर मिश्र १०—००
दशरूपक-रहस्यम् (प्रश्नोत्तरात्मकः) । श्री त्रिलोकनाथ द्विवेदी ८—००
भट्टिकाव्य-दर्पणः (प्रश्नोत्तरात्मकः) । १—४ सर्ग १०—००; ५—८ सर्ग १०—००
चन्द्रकला-नाटिका (प्रश्नोत्तरात्मकः) । श्री परमेश्वरदीन पाण्डेय ४—००
संस्कृतसाहित्येतिहासः (प्रश्नोत्तरात्मकः) । श्री परमानन्द शास्त्री ७—५०
रसगङ्गाधर-हृदयम् (प्रश्नोत्तरात्मकः) । श्री ज्ञानचन्द्र त्यागी १२—५०
लघुसिद्धान्तकौमुदी-चन्द्रिका (प्रश्नोत्तरात्मकः) । विजयमित्र शास्त्री १५—००
कादम्बरी-रहस्यम् (प्रश्नोत्तरात्मकः) । डॉ० नरेश झा १५—००
न्यायसिद्धान्तमुक्तावली (प्रश्नोत्तरात्मकः) श्री राजेन्द्रप्रसाद कोठधारी ८—००

सूचना—श्रीसम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी तथा श्रीकामेश्वर सिंह दरभङ्गा संस्कृत विश्वविद्यालय के परीक्षा-पाठ्यक्रम में निर्धारित शेष ग्रन्थों की प्रश्नोत्तरियाँ भी शीघ्र प्रकाशित हो रही हे ।

नवीन प्रकाशित व्याख्या-ग्रन्थ

वृत्तरत्नाकरः 'चन्द्रिका'-संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतः ।
आचार्य बलदेव उपाध्याय १२—००
चन्द्रकला-नाटिका । 'सुधा'-संस्कृत-हिन्दीव्याख्या । परमेश्वरदीन पाण्डेय १२—५०
परिभाषेन्दुशेखरः । 'सुबोधिनी'-हिन्दीव्याख्योपेतः । श्री विश्वनाथ मिश्र ४५—००
मृच्छकटिकम् । 'विमला'-संस्कृत-हिन्दीव्याख्या । डॉ० जगदीशचन्द्र मिश्र ४५—००
तर्कभाषा । विवेचनात्मक 'माधुरी'-हिन्दीव्याख्योपेता । (अभिनव संस्करण)
डॉ० गजानन शास्त्री 'मुसलगाँवकर' ५०—००
'बाल'-हिन्दी-संस्कृत-कोषः । सम्पादक—श्री रामजी लाल शर्मा १०—००